इश्क़ ख़्वाब ख़ुशबू

डा० शबनम अशाई

ड० शबनम अशाई

IBARAT PUBLICATION
E-213, Shaheen Bahgh, Jamia Nagar
Okhla, New Delhi 110025

Digitized By e Gangotri and Kashmir Treasure

इश्क़ ख़्वाब खुश्बू

पहला संस्करण: 2020
Rs. 200/-

ISBN No. 978-81-948178-6-4

प्रकाशक
मरकज़ी पब्लिकेशन
R-373/3, जोगाबाई, जामिआ नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

मुद्रक
इबारत पब्लिकेशन
इ-213, शाहीन बाग, अबुल फ़ज़ल एन्क्लेव
जामिआ नगर, ओखला,नई दिल्ली-110025
Ph. +91-9015698045
E-mail: salamkhan091@gmail.com

ISHQ KHWAB KHUSBOO

By: Dr. Shabnam Ashai
Ashai Manzil, Tapar Pattan
Kashmir - 193121 (India)

समर्पित

मां के नाम
जिसकी आगोश से छीन कर
ज़िन्दगी
मुझ से ये नज़्में
लिखवाती रही!

शबनम अशाई
की
तख़लीक़ी साँसों का
शुमार

Who looks outwards, sleeps, who looks inwards, awakes.

Carl Jung

शबनम अशाई की शायरी में'लल त्राग' की कुछ बूँदें हैं, जिनकी वजह से उनकी शायरी में शेफ्तगी, रफ्तगी और जज़्बो जुनूँ की कैफियत पैदा हो गई है।

किन सोचों में डूबे हो
हाँ
मैं उसी पानी की बूँद हूँ
जो तुम्हारे कमरे के कोने में पड़ी सुराह़ी में रहता था, आख़िर कार
तुम्हारा समुंद्र
न-जाने कितने दरियाओं का
प्यासा था और
जग जग फिरता था

मैं
हर शाम
सुराह़ी की ह़दें पार करती
तुम्हारे होंट
तरावत के ज़ाइक़े लेते
जग जग फिरने की
थकन मिट जाती
पर हर जग से लाया गया ज्ञान
तुम्हें स्वयं भगवान बना गया
फिर तुम्हारे
पथरीले हाथ उठे
कोने में पड़ी सुराह़ी
तोड़ बैठे और
चोट
पानी को लगी
बूँद बूँद दर्द से तड़प उठी
सर पटकने लगी
तुम अपनी सूखी आत्मा को ले चलो यहां से
किन सोचों में डूबे हो
मैं उसी पानी की बूँद हूँ।

शोयोगनी, लल वेद के वाखियों और शबनम अशाई की नज़मों में बड़ी ममासलत है। वही दर्द, आँसू, तन्हाई, बे-एतनाई, बेज़ारी, इज़तिराब व इलतिहाब और दिल शिकस्तगी (Dispondency) है जिसने लल वेद की ज़िंदगी का मेह्वर व मन्हज तबदील कर दिया था। शबनम की शायरी में भी लल की तरह शो की तलाश का अ़मल मुतहर्रिक और रक़साँ है। इसी लिए दिल के दरूँ में क़ुव्वत और मुहब्बत के मज़हर शो के लिए इस क़दर शकीबाई और इ़जतराब है।

शबनम अशाई भी ध्यान में गुम, लल्ला आरिफा की तरह अपनी साँसों का शुमार करती हैं और ज़ेहनी कैफियत भी इन्ही की तरह है जो नंगे बदन से ज़्यादा रूह की उर्यानी से पशीमाँ हैं।

तुम्हारी रज़ा को लोग
मेरी ख़ता कहते हैं
मेरे हाथों से वह पोशाक
छीन ली गई
जो मैं पहनने वाली थी
और पहनी हुई पोशाक
मैं उतार चुकी थी
मेरे सारे आने वाले मौसम
मंसूख़ कर दिए गए थे
मैंने कोई एहतिजाज नहीं किया
अपना सरे तस्लीम ख़म कर दिया था
मुझे इतनी ईज़ा दी गई
कि अरमानों का रेशम कातना
अब मेरी बर्दाश्त से बाहर है
और फिर मौसम मंसूख़ ना होते
फूल रेशम बटोरते
मेरी उर्यानी ढक जाती
तुम्हारी ताबेदारी में
मैंने अपनी मुट्ठी कभी खोल कर नहीं देखी
कौन अपने ख़्वाब का
एक टुकड़ा काट कर
मेरी उर्यानी ढाँप देगा
लाओ में अपने हाथ की लकीरें मिटा दूँ।

जिस तरह लल के हिस्से में पत्थर ही पत्थर थे, इसी तरह शबनम अशाई के नसीब में वही संगे ख़ारा हैं जो एहसास और

उनकी तख़लीक़ के सीने को मज़रूब और मेहमेज़ करते रहते हैं। शबनम अशाई की शायरी में दर्द के heat waves को हर हस्सास फर्द महसूस कर सकता है। वही दर्द जो लल के वजूद का इस्तिआरा था और जिस दर्द ने उसे आशुफ्ता-सरी और जुर्रत अ़ता की थी, शबनम अशाई की शायरी की शिरयानों में भी दौड़ रहा है।

शबनम अशाई की शायरी में दर्द के मरबूत सिलसिले हैं और दर्द की ज़मीं से ही उनके इज़हार की कोन्पलें फूटी हैं। शबनम अशाई की एक नज़म है।

मुझे मेरे मन की क़ब्र में ही पढ़ लो
नाविल नहीं
एक दर्द हूँ मैं
जो ज़िंदगी से
ज़्यादा पथरीला है
दर्द कभी भी तुम्हारे मन से मिल सकता है
बस तूफान का
कोई हलफ नहीं उठाना
तनाव में हूवेली से निकली
60रोज़ा मनकूहा
हर गाँधीन के
90साल
ख़ामोशी से पीसती है
बदलाओ का क़ुर्ब
रूहू पे
लकीरें खींचता है
काग़ज़ पे खींची
लकीरों में कोई खोया हुआ अपना
दफन नहीं होता।

शबनम अशाई की शायरी के बैनलक़ौसैन में दर्द की लहरें ही

मोजज़न हैं। उनके यहाँ जो दर्द का दाख़िली तूफान(Inner storm of torment) है, वह उनके शेअ़री, तख़लीक़ी बयानिया से मुतरश्शह है तज़ादी वजूद को तस्लीम करने में भी एक दर्द ही है। उनके यहाँ जो तज़ादात का तनाव है वो वजूद की वाकईयत का इज़हार है। जिंदगी एक गर्दाब है और इसी गर्दाब की ताबीर यह नज़्में हैं जो मु ख़्तलिफ मौ जों और लहरों के साथ उभरती और डूबती रहती हैं।

शबनम अशाई की नज़्मों में कैफियतें हज़ार हैं और हर कैफियत उनके ज़ेहन के मौसम और कश्शाफ है। इस में वजूद के हवाले से ख़ुदसुपुर्दगी भी है, तकरार भी, इक़रार भी है, इनकार भी। वस्ल-ए- जानाँ भी है, आतिश-ए-हिज्र भी, जज़बात भी हैं, शबनमी एहसासात भी। उन्होंने अपने वजूद के सारे हवाले, कायनाती वजूद के हवालों से मरबूत कर दिए हैं। यह गोया सिर्फ अपने वजूद की कहानी नहीं है बल्कि कायनात के हर उस हस्सास वजूद की कहानी है जिस पर यह कैफियात तुलूअ़ और ग़ुरूब होती रहती हैं। इस में कई तरह के रस और भाव हैं। इस में "रत्ती भाव" है, संजोग और वियोग है। वह सारे रस और अनासिर जिनसे इंसानी वजूद इबारत है, वह शायरी में मौजूद हैं।

दिल के द्वार का और मन के मथुरा में जो शायरी बसाई जा सकती है वो कुछ ऐसी ही होती है जैसी शबनम अशाई की है। कहीं कहीं शबनम मीरा बाई बन जाती हैं, तो कहीं दमन जैसी बाग़ी, लेकिन शायरी में बाग़ियाना लहजा और एहतजाज मुकम्मल तमकनत और वक़ार के साथ रोशन है।

मुल्के यूनान के शहर एथेंस के एक पार्क में सुक़रात का एक क़ौल जली हर्फों में लिखा हुआ है "अपने आप को जानो" सुक़रात के इस जली जुमले की ख़फी सूरत शबनम अशाई की शायरी में नज़र आती है। शबनम की शायरी भी ज़ात की माअ़रिफत से ही इबारत है।'मैं' से आशनाई कायनात के ज्ञान के लिए नागुज़ीर है। दरअसल

इसी 'में' से आदमी उस सच् को पा सकता है जो आत्मा की आँखों में बसा होता है। सुक़रात ने अपने आपको जानने में ही पूरी ज़िंदगी गुज़ार दी और यही मुनाजात करता रहा कि ऐ ख़ुदा मेरे ज़ाहिर व बातिन को एक कर दे। मन और बानी का फ़र्क़ मिटा दे। मेरे अंदरून को ख़ुबसूरती से भर दे। शबनम अशाई की शायरी भी अपनी ज़ात की माअ़रिफत का एक वसीला है।

बातिन के मौसम पर ही ख़्याल का इन्हिसार होता है। इसलिए उन्होंने अपनी शायरी में अपनी अंदरूनी कैफियत का ही इज़हार किया है कि तख़लीक़ दरअसल सेल्फ डिस्कवरी है। अपने मन में डूब कर सुराग-ए-ज़िंदगी पाने की एक कोशिश।

'मैं' के मुतवातिर क़त्ल या 'मैं' की मौत से जो एक रद्देअ़मल हो सकता है वह पूरी शिद्दत के साथ यहाँ मौजूद है। शबनम अशाई ने'मैं' और उस के इज़तिराब को हर सतह पे ज़िंदा रखा है। दरअसल यही उनकी ज़िंदगी और उनके वजूद का जवाज़ भी है।

हाँ मेरा मैं
कितने जन्म ले चुका था
वह जब पहली बार क़त्ल हुआ था
तो एक बंजर साहिल पर
कई रोज़ पड़ा रहा
फिर एक दिन क्या देखा
सूरज पर कोई हँस रहा है
यह मेरा 'मैं' था
रूप बदल चुका था
पत्थर हो गया था।

मेरे दूसरे 'मैं' के क़त्ल पर
एक और तख़लीक़ पा गया
मेरा तीसरा 'मैं' काली सदियों का

एक गूँगा है
जो सदियों की सरगोशी सुनने
रोज़ समुंद्र में छलांग लगाता है
सफेद झाग में मलबूस
मेरे पहलू में आकर बैठ जाता है
और पूछता है कि तुम कौन हो
मैं फिर सोचती हूँ
मैं तो जब ही की क़त्ल हो चुकी हूँ
मैं कौन हूँ
क्योंकि हर क़त्ल ने
एक नई तख़लीक़ को जन्म दिया
तो क्या मेरा 'मैं'
हर क़त्ल के बाद
तख़लीक़ पाया है
हर क़त्ल एक तख़लीक़ है
तो क्या हर क़त्ल यह नहीं बताता
कि मैं जी क्यों रही हूँ।

शबनम अशाई की नज़्मों में एहसास की कई सरहदें हैं। कहीं आशुफ्तगी है तो कहीं आसूदगी, कहीं ख़स्तगी है तो कहीं दिल-बस्तगी, कभी सोज़-ए-सीना से दाग़ है तो कभी दर्द-ओ ग़म से फिगार, कभी सरापा आरज़ू तो कभी सरापा बेजार।

आधी रात
कोई मेरी ज़मीन पर उतरता है
रोशनियाँ बिखेरता है
झुलस्ती धूप में साया बन के
फैल जाता है
दुनिया की भीड़ में

वह कितना नुमाया है।

तुझे
देख के
यूं लगता है
जैसे
चाँद उतरा हो
मेरी ज़िंदगी की
सियाह राहों में
जिसकी
शफ्फाफ ख़नक किरनों से
मेरा वजूद
रोशन हुआ जाता है
तू मेरी रूह का
नग़मा
तेरी ज़ात से
आबाद
मेरा वजूद।

खोना नहीं
जीना चाहती थी
तुम्हारी
बाँहों के छोटे से हिसार में।

जब तुमने
अपनी रिफाक़त से
उस की अफ्शाँ
भरी थी

एक नए पन की खुशबू से
फ़िज़ा मुअ़त्तर हुई थी
और वह
तुम्हारी रोशनी में
नहाई थी
फिर
तुम और वह
धुंध की मुहीन लहर जैसे
एक दूजे के
रग-व-पै में
सरायत करने लगे।

बस उनके वजूद की ताबीर यह है कि उस में ना ताब है, ना क़रार है, विसाल की तड़प, मिलन की आरजू है। उनकी नज़मों में राहे-इश्क़ की दोनों मंजिलें 'वस्ल' और 'हिज्राँ' रोशन हैं।

शबनम अशाई की शायरी का एक रंग वह है जब दिल-बस्तगी का सामाँ था, वस्ल की राहतें थीं और एक रंग वह है जिसमें ख़स्तगी और शिकस्तगी, पामाली का एहसास है। शबनम अशाई की शायरी में एक मोड़ वह भी आता है जब वह मकरो-फरेब और मुनाफक़त से आलूदा ज़िंदगी को देखती हैं और उन्हें अपनी मासूमियत, मुहब्बत की शिकस्तगी और ईसार के इन्हिदाम का एहसास होता है। औरत तो अपनी जात के आईने में ही कायनात को देखने की कोशिश करती है और जब उस का आईना शिकस्तगी से दो-चार होता है तो दिल के आईने की कैफियत भी तबदील होने लगती है। शबनम अशाई जिस दर्द के सहरा से गुज़री हैं, उस में ऐसी ही शायरी का ज़ुहूर हो सकता है और कैफियत में ऐसा ही इज़तिराब जन्म ले सकता है जो उनकी शायरी के साथ हुआ। यही वजह है कि शबनम अशाई बावजूद अपनी फित्री मासूमियत और जज़्बा-ए ईसार के इंतिक़ामी और

एहतिजाजी लहजे में बात करने लगती हैं।

शबनम अशाई के इस तेवर में गोया पंजुम सुर में सूरज की गुनगुनाहट सी महसूस होती है। सूरज के सीने की ज्वाला-मुखी, उस शायरी के सीने में भी दहकती नज़र आती है।

तुम जान लो कि दुनिया सोचने से इबारत है
अब ज़िंदगी की सिगरेट सिर्फ मैं पियूँगी
और तुम सिगरेट की राख की तरह
मेरी उंगलियों से झड़ते रहोगे।

मेरे नाखुन मत काटना
मुदाफअ़त के लिए
एक हथियार तो ज़रूरी है।

दरअसल वक़्ती और जज़्बाती उबाल और तुग़यान व जौलान की वजह से ज़ेहन की मौजों में इज़्तिराब पैदा होता रहता है। शबनम अशाई ने अपने जज़्बाती हैजानात को जो इज़्हारी शक्ल अता की है और तख़्लीक़ी फिज़ा क़ायम की है उस में वह मुकम्मल तौर से कामयाब नज़र आती हैं।

उनका तख़ातुब या तो अपनी ज़ात है, अपनी तक़दीर है या फिर अपनी ज़ात ही में मुदग़म कोई और पैकर जो बार बार उस से जुदा होता है और उसे तन्हाई के सेहरा में छोड़ जाता है। उन्होंने अपनी ज़ात में जिस वजूद को बसाया हुआ है, इस वजूद के फरेब ने ही उस के एहसास व इज़्हार की शक्लें और सूरतें बदल दी हैं।

शबनम अशाई की नज़्मों में खुद स्वानही अ़नासिर ज़्यादा हैं, जो वारदात और सानिहात उनकी ज़ात पर वकूअ़ पज़ीर हुए, इन वारदात का अपने तख़्लीक़ी फाईल में इंदिराज करती रहीं और इज़्हार की सूरत अ़ता करती रहीं। शबनम अशाई की शायरी और शख़्सी ज़िंदगी के माबैन ज़्यादा हद्देफासिल नहीं है। दोनों एक दूसरे

से मरबूत और मुतराकिम हैं। शायरी गो कि एक शख़्स की है मगर उस में मुख़्तलिफ कैरेक्टर मूड की शक्लें हैं। यानी एक किरदारी होते हुए भी यह शायरी कसीर किरदारी है कि इन्सान बुनियादी तौर पर अपने दरूँ और बैरू शक्लों के साथ कई हिस्सों में मुनक़सिम होता है। वजूद की यह तक़सीम ज़हनी तख़ैयुलात को तअय्यिुनात से मावरा कर देती है और एक ही शख़्स की गुफ्तगु मुख़्तलिफ हैयत व अशकाल में सामने आती है। शबनम की शायरी में जितने भी किरदार हैं, दरअस्ल वह एक ही किरदार की ज़ेहनी कैफियतें और सूरतें हैं।

शबनम अशाई की शायरी शिकस्ता ख़्वाबों और शिकस्ता आरज़ूओं की शायरी है जिसमें ज़िंदगी की तल्ख़ियों और उस की खार शगाफियों का बयान है, जिसमें दाख़िली आज़ार का इज़हार है। इस दिल शिकस्तगी ने शबनम अशाई को फितरत के दामन में पनाह लेने पर मजबूर कर दिया है। यही वजह है कि वह अपने वजूद की तज्सीम(personification) कभी दरख़्त से करती हैं तो कभी मुहाजिर परिंदों से। इस तरह वह गोया अपनी तज्सीम के लिए या अपने वजूदी इज़हार के लिए नए इस्तेआरे और नई अलामतें वज़अ़ करती हैं। जब इन्सानी वजूद की असल अलामत और इस्तेआरे मादूम हो जाएँ तो दूसरे इस्तेआरों की तलाश एक अमरे फितरी बन जाती है। शबनम अशाई ने अपने वजूद की इस्तेआराती तक़लीब के जरीए यह वाज़ेह कर दिया है कि वजूद की जो हक़ीक़ी माहियत और उस की हक़ीक़ी अलामत है, उस की गुमशुदगी या उस का इन्हिदाम ही इन्सान को दूसरी राहें शक्लें इतख़्तयार करने पर मजबूर करता है।

अगर तुम्हारे हज़ार पेड़ों में से
एक में भी होती
एक साल में
छः इस्परे, एक खाद

और तुम्हारी हज़ारों चाहत भरी नजरें
मुझे नसीब होतीं और तब
दिल सोगवार ना होता
मेरी हर टहनी
तुम अपने हाथों तराशते
मैं सँवर जाती।

वह अपनी ज़िंदगी को सी सी फुस्स की तरह लायानी क़रार देती हैं।

मैं चलती रहती हूँ
चलते चलते मेरी एड़ियाँ फट गई हैं
सी सी फुस्स का फर्ज़ कब निभाऊँगी।

शबनम अशाई की शायरी निसाइयत का नौहा भी है और वह'नवा' भी जिसमें आग भरी हुई है। यह निसाई ज़ात की वह लम्बी ख़ामोशी है जो बोल पड़ी है। शबनम के शऊर व एहसास में यह बात अच्छी तरह घर कर गई है कि ताबेअ़दारी, फरमाँबरदारी, ईसार ही औरत का मक़दूर और मुक़द्दर है।

वह जब पैदा हुई थी
इस के कानों में
ताबेअ़दारी की अज़ान दिलवा दी गई थी
जब से अब तक वह
ताबेअ़दारी करती रही।

हवा से पूछती हूँ
हवा मेरी रिहाई की तारीख़ भूल गई है
मुझे इतना याद है
कि सारे क़ुर्ब मेरी ज़ात तक महदूद हैं।

ज़िंदगी के जबरी हालात और तक़दीर की ताबेअ़-दारियों ने

शबनम अशाई में मर्ग के एहसास को भी ज़िंदा कर दिया है। यह एहसास उस वक़्त जन्म लेता है जब ज़िंदगी तमाम तर अज़ाबों के साथ एक वजूद पर मुसल्लत हो जाए और वजूद बे-दियार, बेदिल और बे-ख़ानमाँ बन जाए।

मुझे सफर करने दो
ज़मीन के किसी टुकड़े पर
पाँव जमाने के लिए नहीं
मौत के इंतिज़ार के लिए
मुझे वहाँ तक जाने दो
जहाँ चांदनी के बिस्तर पर
साअ़ते गुजशता में ठहरी हुई
मौत
मेरी राह देख रही है।

जब से
ढेर सारे दिन गुज़र गए
मेरी मौत
शुरू हुई थी
पहली क़िस्त में था
मासूम एतबार
जिसकी मौत ने
रंग चेहरे का
चिराग़ आँखों के
धुंधला दिए
दूसरी क़िस्त में था
एतिक़ाद जिसकी मौत ने
साठ साल का बना डाला
और अब मैं मौत की तीसरी क़िस्त के इंतिजार में बैठी

धूल भरी ज़िंदगी गुज़ार रही हूँ।

शबनम अशाई में मर्द मोआशरे के रवैय्ये ने एक अ़जब सी बे-ऐतिबारी और mistrust का एहसास पैदा कर दिया है। इसी लिए उनकी नज़्मों में मर्दाना मकरो-फरेब के वह सारे नुकूश मिलते हैं जिससे एक औरत की ज़िंदगी बाँझ बन जाती है और उस के वजूद से अज़िय्यत लिपट जाती है।

तुम्हारे दोगले पन ने
मेरे सपनों को
बाँझ कर डाला
मेरे हमराह
यह बाँझ सपने
दरबदर की ठोकरें खा रहे हैं
कितनी महफिलों में लिए फिरी हूँ उन्हें
मेरी आँखें
मुझे महफिल में बैठा कर
नए सपने ढूढने निकलती हैं
फिर रात
नींद की गोली से
उन्हें सपने देखने का फरेब देती हूँ
सुनो
इस से पहले कि मेरी आँखें
कोई सपना चुरा के लाएँ
या मैं
फरेबी कहलाऊँ
तुम अपना एक मुक़र्रर करलो।

यह शायरी दो किरदारों की तक़तीब से इबारत है। एक फ़आल किरदार है और एक मफऊल। फ़आल किरदार की शक्ल में मर्द की ज़ात उभरती है जिसके लिए मुहब्बत महज़ विलास है, जो

सनअ़ती समाज की मुहब्बत पे यक़ीन रखता है जो हृदयहीन होता है और इन्फिआ़ली किरदार की सूरत में औरत की ज़ात जिसमें मुहब्बत का कोमल एहसास होता है, जो ज़रई समाज की मुहब्बत पे यक़ीन रखती है जिसके पास एक धड़कता हुआ पुरसोज़ दिल होता है। एक के अंदर सादियत पसंदी है तो दूसरा मसाकियत पसंद है। एक ईज़ा कोष है तो दूसरा ईज़ा देने वाला। दरअसल यही दो किरदार बुनियादी तौर पर इस शायरी में नुमायां हैं और उन दो किरदारों की ज़ात से ही शायरी में तनाव और तज़ाद की कैफियत पैदा हुई है। मसाकियत पसंद किरदार की ताबीर इन नज़्मों में है।

तुम तो फासलों का ख़्वाब थे
जो तुमने कभी तय होने नहीं दिए
और मैं फिर भी
तुम्हारा हरारत से ख़ाली हाथ थामे
अपने वजूद का लम्स
लुटाती हुई
फासिला कम करने की
दीवानगी में चलती रही।

ज़िंदगी की सिगरेट
तुम्हारे साथ पीने की ख़ातिर
मैंने अपने सोचने की सलाहियत
तुम्हारे नाम कर दी थी
और वह तमाम मखौटे
तुम्हारे कमरे में सजा दिए थे
जिन्हें तुमने उम्र भर
शिकार किया था
मैं अपनी सारी खुशबूएँ
ख़र्च करके

तुम्हारा पूरा दर्द ख़रीद रही थी
लेकिन तुमने आँखों पर ही नहीं
दिमाग़ पर भी पट्टी बाँध रखी थी
सड़क हादसे के बाद
मेरा पलस्तर चढ़ते समय
जो तुमने एक लम्हे को
अपनी आँखों की पट्टी खोल दी थी
तुम्हारा सिर झुक गया था।

मैं जिस्म पे Telcum नहीं अपने वजूद पे
नमक छिड़कना चाहती हूँ
सदियों से जमी हुई
बर्फ काटना चाहती हूँ
क्या तुम रिश्तों का अलाव
दहका सकते हो
मैं अपनी आँखों को
आँसूओं से
तलाक़ दिलाना चाहती हूँ
जो सदियों से
आँसू काश्त कर रही हैं
क्या तुम मेरी आँखों को
ख़्वाब दे सकते हो
ज़माने के बखेड़ों में नहीं
मन की दुनिया में
घर बनाना चाहती हूँ
बस अब मैं
दिल की बात सुनना चाहती हूँ
क्या तुम मेरे मन में

बोल सकते हो।

मैं किसी आँख में
ठिकाना नहीं
तुम्हारी खोई हुई
नींदें ढूंढना चाहती हूँ
घर की छत से
रिहाई नहीं
उस फरार में जीना चाहती हूँ
जिसमें तेरी ज़िंदगी है।

दूसरा किरदार सादियत पसंद है जिसकी ताबीर यूँ हैः
वह सिर्फ वैसा करता
जैसे वह सोचता
लेकिन राय
हर शख़्स की ज़रूर लेता
मशवरा अपनाईयत की अलामत है लेकिन
मुझे ख़ौफ आता है कुछ कहने से
उस के फैसलों की तलवार ने
मेरी सोच को ज़ख़्मी कर दिया है
अब मेरी आँखों में
ख़्वाब नहीं अंदेशे हैं! मुझे ख़ौफ आता है कुछ कहने से
मैं डरती हूँ कोई मेरे लफ्जों से मफहूम
और मेरी सोचों से ख़ुद-आगही
छीन लेगा।

वह जो दूसरों की दुनिया के
ख़ुदा होते हैं

एक बदन को
न-जाने कितनी क़ब्रों में
बांट देते हैं
और जब कभी वह उन क़ब्रों के अज़ाब से
जागते हैं
ज़िंदगी की
आज़ाद साँसों में
ज़िंदा ख़्वाबों को हुमकता देखकर
अपने अंदर धड़कना
छोड़ देते हैं
और फिर आहिस्ता से
उन्हें क़ब्रों की तह में
आकर बैठ जाते हैं।

तुम बार बार
जीने की ख़ातिर
मेरी मन की मिट्टी में
मौत क्यों बोते हो
जो मिट्टी तख़लीक़ का दुख
सहती हो
बाँझ नहीं होती!
तुम मुझसे
और कितनी नज़में लिखवाओगे।

मुहब्बत से मरबूत शबनम अशाई की शायरी में उस कीमियाई रद्देअमल की शनाख़्त ब-आसानी हो जाती है जिसे फीनायलेथैलेमाइन(Phenylethoylamine) कहा जाता है। उनकी शायरी में उस कीमिया का तेज़ बहाव महसूस किया जा सकता है।

डोपेमाइन (Dopamine) और एड्रिनैलिन (Adrenalin) जैसे कीमियाई निज़ाम से उनके तख़लीक़ी निज़ाम का बहुत गहरा रिश्ता है। कैमिकल और हार्मोन्स के इमतिजाज़ की वजह से मुहब्बत का दरिया, मोजज़न और मुज़तरिब होने लगता है और उसी कीमियाई इज़तराब का इज़्हार उनकी शायरी में भी है। उस से शबनम के ज़ेहनी निज़ाम और उस के तहर्रुकात की तफहीम में मदद मिल सकती है।

ऐरख़ फ्रॉम के नज़रिए से इस शायरी को देखा जाए तो इस में तकफीली वस्ल की इन्फेआली सूरत नज़र आती है। जब शायरा किसी एक ज़ात के जुज़ की हैसियत से अपनी वाबस्तगी चाहती है या उस की ज़ात का ततिम्मा बन जाती है और दूसरी तरफ मर्द एक सादियत पसंद के तौर पर सामने आता है। दो मुख़ालिफ क़ुतबैन के माबैन वस्ल की एक सूरत भी उस में नुमायाँ है। सबसे बड़ी चीज़ जो इस शायरी में है वह तकतीबी वस्ल है। यह तकतीबी वस्ल ही शबनम अशाई को अपनी ज़ात से आश्ना करती है। बावजूदे कि शबनम के यहाँ लहजे में ज़्यादा करख़्तगी नहीं है फिर भी कहीं कहीं एहसास होता है कि वह अपने असल की तलाश में उन हदों को पार करना चाहती हैं जो हदें तज़ाद की तरफ ले जाती हैं।

मर्द औरत के तज़ाद में वस्ल ही असल है और इसी से औरत मर्द की ज़ेहनी और नफसी हरकियात से आगही होती है। शबनम अशाई के यह दो शेअ़री किरदार दरअसल इन्सानी ज़िंदगी की कैफियात के मज़हर हैं। एक तरफ मुहब्बत की फआ़लियत है, फुअ़०ाल लगाओ है दूसरी तरफ मफऊलियत और बेतवज्जुही है। एक तरफ मुहब्बत में शिद्दत है, दूसरी तरफ तशद्दुद है। शबनम अशाई के यहाँ इसी लिए इस फरदियत ने जन्म लिया है जो लातअ़ल्लुक़ी और बेगानगी का ईशारिया है। वह अपने अकेले-पन और जुदाई पर ग़लबा पाने की कोशिश में फित्रत की आग़ोश में पनाह लेती हैं और इस तौर पे अपनी फरदियत के अज़ाब से

निजात हासिल करती हैं। मगर दरअसल तलाश, एक हम-आहंगी की है। कायनाती शऊर (Cosmic consciousness) और कायनाती तवानाई (Cosmic energy) के विसाल की है जिससे वजूदे हक़ीक़त और असल तक रिसाई पा सकता है और यह औरत, मर्द की मुकम्मल ख़ुद सुपुर्दगी के ज़रिए ही तय की जा सकती है, हम-आहंगी यानी मिथुन के बग़ैर असल तक रिसाई नामुमकिन है। पुरुष और प्राकृति दोनों एक ही हैं। उस्तूरी कहानी में है कि इब्तिदा में मर्द औरत एक थे, काट कर उन्हें दो हिस्सों में तक़सीम कर दिया गया। तभी से दोनों अपने अपने खोए हुए हिस्सों की तलाश में भटक रहे हैं। दोनों के वस्ल ही से कायनात की हम-आहंगी जन्म लेती है और यही Oneness कायनात का फिनोमेना है

मधुर भक्ती के बावजूद मुहब्बत में फस्ल है, वस्ल नहीं। लल्ला आरिफा को आत्मा सम योगम नसीब हुआ, मगर शबनम अशाई को अपने शऊर की गुमशुदगी और महबूब की ज़ात में मुकम्मल तह़लील के बावजूद मुहब्बत का नूरानी हाला नहीं मिला। राधा की तरह अपनी ज़ात की नफी और ख़ुद फरामोशी के बावजूद भी "विसाल" और Other true नसीब नहीं हुआ।

शबनम अशाई की शायरी में निसाई एहसासात, जज़बात और इदराकात हैं और उनमें मुसबतियत (Positivism) भी है। Auguste Comte की तरह शबनम अशाई की शायरी में भी जाररहियत नहीं बल्कि मारुज़ी अंदाज से मसाइल को समझने और ख़ुद को क़ुर्बान करने की कैफियत भी मिलती है। उनका तअल्लुक़ Raunchy culture और Playboy bunny इमेज में असीर female chaunist pig से नहीं है।

औरत और मर्द के तफावुलात अलग हैं। मर्द मुआशरे ने जिस निसाई तफावुल का तअय्युन किया है वह ग़लत है। औरत महज़ pleasure और power की गुलाम नहीं है और ना ही अब Chattel Status में क़ैद रहना चाहती है, बल्कि उस के दाएरा-ए

कार में और भी बहुत सारी चीजें हैं। उनके जज़बात उनकी धड़कनें हैं। जब औरत को खानगी अक़दार और उमूर में क़ैद कर दिया जाता है तब बग़ावत जन्म लेती है। जब इस से Space छीन लिया जाता है तब बाग़ियाना जज़्बे की नुमूद होती है क्यों कि आज की औरत अन-सोया या गंधारी बन कर नहीं रह सकती। वफा और ईसार की पैकर बन कर रहना ही उस की ज़िंदगी का मतलूब व मक़सूद नहीं है, बल्कि अपने space की तलाश भी उस की ज़िंदगी में शामिल है क्योंकि वह यह महसूस कर रही है कि उस के लिए तो चाके-कफस से बाग़ की दीवार देखना भी ममनूअ़ है। बाक़ौल सारा शगुफ्ता औरत की रियासत चादर कुशाई तक महदूद है और उस का वतन बदन से ज़्यादा नहीं है। जबकि मर्दों की खुद-मुख़्तारी का रक़बा इस क़दर वसीअ़ है कि उसे Polygamy तक की मुराआत हासिल है जबकि औरत एक ही मर्द की 'असीर ज़िंदानी' बन कर रहती है। उस के लिए Polyandry ममनूअ़ व महजूर है। मर्द की इस ख़ुद-मुख़्तारी के ग़लत इस्तेमाल से औरत और मर्द के माबैन रिश्ते के इस्तेहकाम और ऐतबार पर मनफी असरात पड़े हैं और दोनों के माबैन बे-एतमादी और ख़लीज बढ़ी है। इसलिए औरत ऐसे तकतीबी निज़ाम के ख़िलाफ है बल्कि वह तो पिदर सिरी निज़ाम के भी ख़िलाफ है। वह अपने उन हुक़ूक़ का मुतालबा करती है जो उन्हें अ़ता किया गया है। ह़यातयाती ऐतबार से उसका दाएरा-ए कार अलग है। मगर समाजी और सियासी और ज़ेहनी तख़लीक़ी ऐतबार से दोनों के दाएरा-ए कार में इश्तराक है। शबनम अशाई के यहाँ भी इस पिदर सिरी निज़ाम से बग़ावत मिलती है। मगर यह बगावत Energetic है।

औरत जिस समाज़ी जिन्सी आज़ार के बीच ज़िंदगी गुज़रती है, उस आज़ार से नेजात हासिल करने की तमन्ना हर एक औरत में होती है। यही आरज़ू, यही ख़्वा०ाहिश, यही तमन्ना उस शायरी में भी है। शबनम अशाई मर्द को मुतग़ायर नहीं बल्कि अपने असल का

एक हिस्सा समझती हैं। इसीलिए उनके यहाँ उस खोए हुए हिस्से की तलाश का अ़मल सबसे ज़्यादा नुमायाँ है और तलाश के मरहले में जिन अज़ीयतों से दो चार होती हैं, उन अज़ीयतों का इज़हार भी है।

शबनम की शायरी में इश्क़िया रिवायती किरदार की तक़लीब भी है। रिवायती और क्लासिकी शायरी में मर्द ही मज़लूम होता था और औरत सितमगर और जफाशिआर होती थी। यहाँ मआमला मक़लूब है। औरत शहामत, शुजाअ़त, फराख़-दिली magnanimity की अलामत के तौर पर सामने आती है जबकि मर्द बुज़दिल और तंगचश्म के तौर पर रूबरू होता है। मर्द, औरत की जिबिल्ली, ख़लक़ी तक़लीब भी यहाँ नुमायाँ है। एक औरत मर्द की बेवफाइयों और उनकी सितमगरी का बयान करती है। इशक़ की यह तकलीब नए ज़माने की कैफियत का ग़म्माज़ है और नए ज़माने के सिवा दरअसल यह उस जख़्मी रूह़ की दाख़िली दास्तान है जिसे बार बार नेज़ा-ए सितम से छलनी किया जाता है। दिल की बेताबी, आँखों की बे-ख़्वाबी और तस्कीने इज़तराब की एक ही शक्ल है। तख़लीक़ मगर यहाँ भी औरत को इमतियाज़ का सामना करना पड़ता है। औरत का तख़लीक़ी अमल अपने वजूद के ख़ला (void of existence) को भरने की एक कोशिश भर ही तो है।

यह शबनम की दाख़िली दुनिया है, यह लम्ह-ए-हाज़िर की शायरी है। ध्यान की, जहाँ दाख़िली दुनिया का तहर्रुक ज़्यादा है और ख़ारिजी कायनात का कम। ध्यान के ज़रिया शबनम अशाई बातिनी दुनिया के epicentre तक पहुंच गई हैं।

शबनम अशाई की इस शायरी में कहीं कहीं वह तिलिस्मी मक़ामात भी आते हैं कि क़ारी breathless हो जाता है। शबनम अशाई की शायरी में Attractive molecules की मौजूदगी, उनकी शायरी को हुस्न की तज्सीम में तबदील कर देती है।

लाओ ज़रा पहन लूं तुम्हें
तन्हाई उतार दी मैंने

बाहर कॉरीडोर में पड़ी सिसक रही है
अपने धीमे लहजे में
वह सारी दास्तानें सुनाती
जिन्हें सुनकर मैं धीमी आँच पर
पहरों सुलगती थी...
लाओ ज़रा पहन लूँ तुम्हें
वह key hole से झाँक रही है
जैसे हम मौक़ा पाते ही
अपने असल में झाँकते हैं
इससे पहले कि वह
मुझे नंगा देख पाए
लाओ एक दूसरे की असल में
शामिल हो जाएँ
मैं अपनी सारी शबनम
तुम्हारी पलकों पे गिराती हूँ
तुम मेरी साँसों की पगडंडी से
मेरे अंदर उतर आओ
मैं ढक जाऊँगी
अपनी असल की अमाँ पाऊँगी
लाओ ज़रा पहन लूँ तुम्हें।
मैंने अभी तक
अपने सफर का आग़ाज़ नहीं किया
लेकिन बेशुमार दुख
मेरी जान से गुज़रते रहे
रक़्स करते रहे!
और वह दर्द भी जो मेरी हमशीरा ने
ज़बह होते हुए
मेरी आँखों में रख दिया था

जब से
दुख जी रही हूँ।

लातअ़ल्लुक़ी के पानियों में
हम कब तक तैर सकते हैं
तुम मेरी आरज़ू
पूरी नहीं कर सकते, ना करो
मगर मेरे दिल के अंदर
बोलना छोड़ दो।

शबनम अशाई की शायरी ऐसी है जैसे गोरे चेहरे पर सांवरी आँखें। कभी कभी तो उस शायरी के पैरहन पे आँख भी ठहर नहीं पाती। यह सर्व-कामत सनोबर शायरी धीमी आँच पर पहरों सुलगती रहती है और मोतियों की लड़ी सी बनती जाती है जिसका रिश्ता आँसू और दर्द से है। मुसहफी ने महबूब की खुश क़ामती पर एक उम्दा शेअ़र कहा था, शबनम अशाई की ख़ुश क़ामत शायरी के बारे में यह शेअ़र सादिक़ आता है कि शबनम की शायरी उनकी शख़्सियत से अलैहदा नही है।

बैठे बैठे जो हो गया वह खड़ा
इक सितारा सा शब ज़मीं से उठा

शबनम की शायरी में ensnaring कुव्वत है और सच पूछिए तो उर्दू शायरी में यह एक husky voice है। यह perfect porcelain poetry है। शबनम अशाई मुख़्तलिफ लहजों की शायरा हैं। कहीं कहीं उनका imperious style होता है तो कभी उस का low actave tone ग़ज़ब ढाता है ।

हक़्क़ानी अलक़ासमी
Cell: +91-9891726444
E-mail: haqqanialqasmi@gmail.com

कविताओं का उर्स

एक दरगाह है जहाँ इश्क की निमाज़ें अदा होती हैं. इन्हीं निमाज़ों के सजदों का परिणाम हैं कविताएँ. यह कविताएँ मन्नत के धागों जैसी होती हैं, जो दिल का रिश्ता आशाओं से जोड़ती हैं. इस दरगाह पर तभी उम्मीदों के चिराग़ रोशन रहते हैं. इन चिरागों की रोशनी रातों को भी दिनों में बदल देती है. जहाँ रात दिन का फ़र्क रहता ही नहीं, वहीं उर्स मनते हैं. इसी उर्स का हिस्सा हैं शबनम अशाई की कविताएँ:

लाओ, एक-दूसरे की अस्ल में
शामिल हो जायें
मैं अपनी सारी शबनम
तुम्हारी पलकों पर गिराती हूँ
तुम मेरी साँसों की पगडंडी से
मेरे अन्दर उतर आओ
में ढक जाऊंगी
अपनी अस्ल की अमान पाऊँगी

लाओ, ज़रा पहन् लूं तुम्हें

आज का युग शोर-शराबे का युग है. इश्तिहारों और एलानों का युग है. इस बीच सरगोशियों को सुनने का फैशन नहीं है. इस परिस्थिति ने सब से अधिक नुक़सान कविता को पहुँचाया है. अब कविता भी फैशन की तरह अदा की जाती है. अन्य भौतिक उत्पादों की तरह कविता का निर्माण हो रहा है. कविता का भी बाज़ार लगा है. सच्ची और अच्छी कविता की तलाश बहुत कठिन हो गयी है. पर उम्मीद अबी बाक़ी है. इस बाज़ारीकरण के बीच यहाँ वहां से कुछ सच्ची आवाज़ें भी सुनाई देतीं हैं. उन्हीं आवाज़ों में शबनम अशाई की आवाज़ भी है:

तुमने मुझे इतनी बार मिटा दिया है
कि अब मैं
बिना किसी चहरे के जी सकती हूँ
पर कोई बुत नहीं बन सकती

शबनम अशाई की कविताएँ हमें जिस सफ़र पर अपने साथ ले जाती हैं, उस सफ़र में अंधेरों से लड़ने का कोई वायदा नहीं, अपितु रोशनी के धागों से बंधी पतंगों को उड़ाने का आयोजन है. यह सफ़र किसी खिंची हुई रेखा को पीटने का सफ़र नहीं, अपितु एक रेखा को खींचने का आवाहन है:

तुम मेरा लिबास हो
तुम्हें पहने हुए
मैं उरयां हूँ
यह गुमां न था मुझे
गुमां ख़ुदा है
ख़ुदा लोग हैं
लोग सबूत हैं
तुम्हारे'तुम' के
मेरा'मैं' एक अफ़वाह है

लोगों की उड़ाई हुई

अच्छी कविता की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती. अच्छी कविता केवल अपने साथ ले जाने का न्योता भर होती है. शबनम अशाई की कविता अपने साथ आने का कोई निमंत्रण भी नहीं देती, बस अपने सामने से चुपचाप गुज़र जाती हैं और हम एक अदृश्य धागे से बंधे उसके साथ निकल जाते हैं:

अँधेरा और मैं
न कोई राह
न मंजिल
न डगर
न ख़्वाब
न दस्तक
न इंतज़ार
न लफ्ज़
न धुन
न कोई साज़
न आवाज़
मगर ख़ुदावंदा
तुम

शबनम जब भी अपनी मन की वाटिका में तितलियाँ के पीछे भागती हैं तो वह रंगों की सौगात पाती हैं. तब उनकी कविता की मासूमियत उनके पाठकों को भी सराबोर करती है. पर जब वह अपने बाहर उपवन में उन्हीं रंगों की तलाश में निकल पड़ती हैं तो उन्हें बेहद निराशा होती है. वही निराशा फिर उनकी कविता बांटती है:

मुझे मेरी क़ब्र में ही
पढ़ लो

नावेल नहीं
एक दर्द हूँ मैं
जो ज़िन्दगी से ज़्यादा पथरीला है
दर्द कभी भी तुम्हारे मन से मिल सकता है
बस तूफ़ान का
कोई हल्फ नहीं उठाना

हर दौर में दो तरह का साहित्य लिखा जाता रहा है. एक मानवीय सरोकारों की रिश्तेदारी में लिखा गया साहित्य और दूसरा निरी समकालीनता का साहित्य. मानवीय सरोकारों की रिश्तेदारी में लिखे गए साहित्य में होमर से लेकर ग़ालिब तक, ल्लाल्लेश्वरी से लेकर टैगोर तक का साहित्य आता है जो हर युग में और हर समुदाय में प्रासंगिक रहता है, जबकि निरी समकालीनता का साहित्य केवल अपने युग के और अपने समुदाय के मंच पर ही सार्थक रहता है(ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवि प्रोफेसर रहमान राही इस साहित्य को'रोजनामचा- साहित्य' कहते हैं.(शबनम की अधिकतर कविताएँ पहले क़बीले से संबंध रखती हैं यद्यपि वह फैशन की कविता का सहारा भी लेती रही हैं. जब वह अपने मन की सुनती हैं तो हर बाहिरी शब्द भीतर के अर्थ-सन्दर्भ पाकर हर शब्दकोष को फलांगता हुआ विस्तीर्ण आकाश की तरह फैल जाता है:

मुझे मेरा अकेलापन
थपथपा रहा है
तुम्हें तुम्हारा फरार
सहला रहा होगा
मुहब्बत खोने पे ऐसा
अक्सर होता है
हमारा खोया हुआ सहारा
हमारा इश्क़ हो जाता है

शबनम अशाई की कविता सन्नाटे का छंद है. यह छंद भौतिक छंद से भिन्न है. इसे बाहरी साज़ पर गया नहीं जा सकता सन्नाटे का छंद भीतर की बांसुरी की लय पर गूंजता है. यही गूँज फिर दरगाह की क़व्वाली की तरह हर आशिक़ के मन-कर्णों तक सफ़र करती है और एक उर्स हो जाता है. शबनम की अधिकतर कविताएँ इसी उर्स का तबर्रुक हैं.

सतीश विमल
पोस्ट बॉक्स नंबर:1089,
जी पी ओ, श्रीनगर-190001 कश्मीर

आज स्कूल जारही हो
तुम्हारी गुड़िया
देख रही है
किसी ने उसको नहलाया नहीं
कुछ खिलाया नहीं
कम्बल मैं लपेट के
किसी ने उसको
सहलाया नहीं

मुसाफिर हूँ
किसी नामुराद सफर की
और तुम्हारे रस्ते पे
दरमांदा हूँ !
तुम मुश्किल नवाज़ हो
मेरा सफर
फिर शुरू कर दो
तुम्हारी क़ुर्बतों के
वह सारे लम्स
लौटाने दो
जो तुम ने मेरे
कश्कोल में डाल दिए थे
और मुझे भी लोटा दो
मेरे सच्चे पन की वह रुतूबत
जो तुम्हारे शहर में नायब है
कोई दुनिया नहीं मेरी
जहाँ लोट जाना है
लेकिन जाना है
बस चले जाना है
तुम्हारे रास्ते से
हट जाना है

पूरा दुख कोई नहीं बांट सकता
तुम ने तो
आधा सच भी नहीं बांटा !
तन्हाई सब कुछ जानती है
दुख और सच में यकताई का रिश्ता है
तुम्हारे शब्द
जो उम्मीदें छोड़ गए थे
वह मेरे मन पर कंदा हैं
मेरे मन तक कौन आएगा
तुम्हारे लम्स से भीगती तन्हाई
चुप ओढे पड़ी है !
तन्हाई जब मुझे बांट रही थी
उस ने मेरा सफर
तुम्हारी दहलीज़ पर रख दिया था !
क्या तुम मुझे विदा करने
अपनी दहलीज़ तक नहीं आओगे ?

अगली फ़ोन काल पे
वह तमाम चिराग़
बुझ जाते हैं
जो मैं
पहली फ़ोन काल के बाद
जलाती हूँ !
चिराग़ जलाते जलाते
मैं
अपनी उंगलियाँ भी
जला लेती हूँ
मेरी उंगलियाँ झुलसने का इंद्राज
तुम अपनी
कौन सी फ़ाइल में रख रहे हो ?

घर, बाज़ार और क़ब्रिस्तान
मालूम है
रिश्तों के भी
ज़लज़ले होते हैं
और जैसे तुम्हारी दुनिया में
भूकंप पीड़ित
घरों में वापस घुसने से
डरते हैं
वैसे ही मन भी दोबारा
रिश्तों में जीने से
डरते हैं
फिर मलबा
घर बाजार क़ब्रिस्तान का हो
या
जज़्बों उम्मीदों और खवाबों का
बस एक ढेर होता है
मलबे का
जो सिर्फ
कोई खाई भरने के काम आ सकता है

काश तुम समझ सकते
तुम्हारी दुनिया जैसी ही
हूबहू
मन की दुनिया होती है
जहाँ जज़्बा, उम्मीदें , ख़्वाब
सब अपनी अपनी जगह
समझे हुए होते हैं
जैसे तुम्हारी दुनिया में

आंसू थम जाते
तो रास्ता दीखता
कैसे चलूँ
किधर को जाऊँ ?
मन से पूछते
अपाहिज है
वह उसी पल
हादसा का शिकार होगया था
जब मेरी आँखों में
ख़्वाबों की जगह
मजबूरियों ने ले ली थी !
अब
राहें मुझे तक रही हैं
और कह रही हैं
आरज़ू न सही
ख़्वाब न सही
तमन्ना न सही
किसी सानिहा की तरह
दबे पांव आओ
कि सन्नाटा
ख़ौफ़ खा रहा है

उसको
तारीख़ से आज़ादी दी गयी थी
वह इतना चली
कि उस का
कोई भी नाख़ुन नहीं बचा
बिना नाख़ुन की उँगलियाँ
भद्दी ही नहीं बेकार होजाती हैं
फिर वह बहने लगी
और बहती रही
अपनी अनंत धारा मैं !
तारीख़ बहाव की खखूबसूरती क्या समझती
बांध बांधे
बिना यह सोचे
क़ि सड़ांध पैदा होजाने पर
दम घुट सकता है
तारीख़ की
मौत वाक़े हो सकती है

मैं जब भी ज़िन्दगी को ढूंढ़ती
तुम मुझ से रूठ कर
ख़्वाबों में रूपोश होते
तब जो मैं तुम से पूछती
वह अब
मेरे सवाल नहीं
मैं अपनी बाज़गश्त से भर गयी हूँ
ला तआलुक़्क़ी की क़ैद में
सलाखें थामे
दुनिया को देख रही हूँ

कल से
तुम्हारी ख़ुशी
मेरी नहीं होगी !
जैसे मेरी ख़ुशी
कभी भी
तुम्हारी
कुछ न लगी !
जो अपनी'मैं की जगह
तुम्हारी ख़ुशी रखती थी
जो अपनी 'मैं "नहीं हूँ !
तुम
जो सब के लिए हम
और मेरे लिए
"मैं " हो
जान जाओ
कि मैं एक इंतेहा हूँ
कल से

यह जितने दाग़
मेरे चेहरे पे हैं
इस जुस्तजू में पाए हैं
कि तू खुश है तो
रब खुश है
तुम्हें खुश देखने को
मैं ने
अपने हर सफर के मंज़र
खंडर कर दिये हैं
मेरी सारी तवानाई
तुम्हारी खुशियां चुनते चुनते
जायल होचुकी है
जानते हो
मैं ने तुम्हें चाहा है
सोचा है
पूजा है .....
तुम ने तो मुझे
सिर्फ जन्मा है
मुझे लौटा दे
मेरे होने की शाहिद
तेरी ख़ुशी
तेरी ख़ुशी से मेरा होना है

तुम्हारी ला तअल्लुक़ीकी गर्द
उन तस्वीरों पर जम गयी है
जो एक दूसरे के
तसव्वुर के सहारे
खींची थी
तुम ने
और मैं ने
तुम सोच रहे हो कि मैं रूठ बैठी हूँ
दुखों की बर्फ हटाते हटाते
मेरी उंगलियां कट गयी है
कैसे झाड़ दूँ उन तस्वीरों को ?
मेरे मन से तुम
उन तस्वीरों के नक़्श
मिटा क्यों नहीं देते
तुम्हारी उंगलियां तो
सालिम हैं

ज़िन्दगी जीने की ख़ातिर गुज़रती जंग से घायल
हम
जिस डगर पे मिले थे
एक दूजे को सालमियत का एहसास दिलाते हुए
बे शुमार अज़ीयतों
और कितनी नाकामियों को भूल गए थे !
उसी डगर का पड़ाव
चंद लम्हों का था
फिर अपने अपने महाज़ पर पहुंचना था
लेकिन वापसी पर
कोई जंग नहीं मन सुनसान था
सिर्फ वही लम्हे उजले थे
सिर्फ वही डगर लाफ़ानी !

सुनो
क्या सच मुच
नहीं बुलाओगे मुझे
तुम्हारे ग़ाज़ी से
मैं ने कहा था
मौत का इंतेज़ार कर रही हूँ
वह कह रहा था
मौत
मुझ जैसे बदकारों को आती नहीं
तुम तो सभी को बुलाते हो
मुझे मौत क्यों नहीं आएगी
मौला
तुमने जो जहन्नम भी बनाई है
मैं
तुम्हारे बन्दों की बनाई हुई
जन्नत में
कब तक ठहरों ?

वह अपने बुरे दिनों में
मेरी बड़ी इज़्ज़त करता
बहुत मान रखता
और रोशन दिनों में
मेरी दिल शिकनी करके
उसका दिल कामरान महसूस करता
इस ग़ैर मतवक़्क़े बर्ताव से
मैं कोई बग़ावत तो नहीं करती
लेकिन एक आदर्श ज़मीर
नीस्त व नाबूद हो रहा है !
इतना बड़ा सानिहा
मैं कहाँ दफना दूँ
कि मेरे क़दमों तले
अब कोई ज़मीन
रही नहीं

औरों की आँख से देखना
सोची हुई सोच को जीना
मेरी जुस्तजू की इंतिहा नहीं
मेरे सरमाये उलूम व हुनर में
जो अक्स हैं
महदूद ज़मीन में आ नहीं सकते
मेरे ख़ेमा को
इस ज़मीन से उखाड़ दो

हर तैरने वाला
तैरता नहीं !
कोई पानी में
सिर्फ हाथ पैर मरता है
और तैरने वाले से
ज़्यादा थक जाता है
ऐसे में
साहिल का नज़ारा
उसके हाथ पैर
फिर चला देता है
ज़रा हाथ बढ़ा कर देखो
वह पानी से निकलना चाहता है

वह तन्हाई के चर्खों पे
कातती थी अज़ीयतें
जो अपनाइयतों का सिला थीं
काता हुआ धागा
एक सच था
जो वह तुम में परोके
अपनी ज़ात की बख़िया गिरी का
ख़्वाब बुनने लगी थी
कि दफ़अतन
उधेड़ने लगे तुम उस को
वह ख़ामोशी के साज़ पे
अपनी ज़ात के उधेड़ने की गूंज
मुक़द्दर की धुन में
बजा तो रही है पर
उस का मन
बे घर होगया है
जैसे परिंदे
मौसमों के बदलाव में
बे घर होजाते हैं

टेबल पे सजे गलोब को
घुमाते हुए हाथ
वह हिस्सा नहीं छूते
जो हम जीते हैं
स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी
के निसाब में
जो शामिल होता है
ज़िन्दगी के इम्तेहान में
नहीं पूछा जाता
फिर भी
डिग्रियां ले के हम
ज़िन्दगी के इम्तेहान में
ऐसे बैठते है
जैसे कोई
टेबल पे रखी हुई गुलोब को
घुमा के
ऐसा महसूस करता है
जैसे दुनिया उस की पहुँच में हो

तुम्हारी बे रहम सोच की सुईयां
मेरे वाल क्लॉक में धड़क रही हैं
पर मैं कमरे मैं नहीं
मन की इबादतगाह में बैठी हूँ
और उस औरत की आहट
सुन रही हूँ
जो अपने दुख
ख़ुद भोग के
एक काइनात तख़लीक़ करती है
वाल क्लॉक से बाहर
सोच की सुई बन कर
मंज़िलों की घड़ी में
धड़क रही है

अब तुम पे शायरी हो सकती है
क्योंके अब तुम
हर बात के साथ
'लेकिन' लगा लेते हो
और'लेकिन दुख है
लेकिन मेरा मन
दुख से इतना लबरेज़ है
कि तुम मुझ में शायद
समा नहीं सकते
बात मानो
मेरी 'लेकिन ' मैं छुप के
कुछ पल
तुम भी
'लेकिन' की दुखन जी लो

तुम्हारे वरक़ नहीं पलटती
उस लफ्ज़ को तलाशती हूँ
जिस में तेरी कहानी है
मैं किसी आँख में
ठिकाना नहीं
तुम्हारी खोई हुई
नींदें ढूंढ़ना चाहती हूँ
घर की छत से
रिहाई नहीं
इस फरार में जीना चाहती हूँ
जिस में तेरी ज़िन्दगी है

ख़्याल की दुनिया से
उठा के
मुझे एक महल में
डाल दिया गया था .....
क्या तुम अभी
ख़्याल की दुनिया में
रह रहे हो
या चुन दिया गया कहीं
तुम्हें भी ....
अगर नहीं
तो मैं कुछ पल
तुझ में रह सकती हूँ
पर तुम मुझ में
पल भर भी नहीं रह सकते
ख़्याल की दुनिया छोड़ के
मैं
धुप में झुलसी हुई
गली की तरह
वीरान हो गई हूँ

तोहफा में मिली पेंटिंग में
चारौं मौसम
सुनहरी रंग से खींचे गए हैं
और यूँही मिली ज़िन्दगी में
सिर्फ एक मौसम
आंसुओं के रंग से
खिंचा गया है
दोनों क़ैद हैं
एक कमरे में
पेंटिंग सालिम है और
ज़िन्दगी से पूछती है
तेरे बाक़ी मौसम कहाँ है ?
ज़िंदगी पेंटिंग से कहती है
सुनो मुझे सोचो नहीं
उलझ जाओगी
मैं सोचने की नहीं
जीने की चीज़ हूँ
पेंटिंग ख़ामोश होक
दिवार पे लटक जाती है

जब नफ़रतों की बारिशों में
घर
ज़मीं बोस हो जाते हैं
तो मन
हिजरत की छत में
घर बना लेता है
हिजरत की छत
जला वतन लोगों की तरह
यक़ीन से महरूम होती है
लेकिन मन इस बात से
महरूम नहीं होता
कि वो दोबारा
किसी के
हाथ नहीं आता

सारी ख़तायें
मुझे पहना दो
सच बोलने की सज़ा में
बे लिबास
में ही हूँ

वह
मेरे सिवा
सब के लिए
'हम' था
और मेरे लिए
'मैं'

एक रोज़
मैं ने सजदे से
सर उठाया
वह
वह था ही नहीं
जिस को मैं पूज रही थी

उसने अहद बांधा था
हिम्मत से चलते रहने का
सब को मंज़िल तक पहुँचाने का
सब को खुश देखने का
उस ने अहद बांधा था
हिम्मत से चलते रहने का
मिज़ाजों की तब्दीलियां सहने का
समझौतों का कर्ब जीने का
कि एक दिन अचानक
काला सूरज तुलू हो जाता है
उसके अहद को गुनाह
हिम्मत को ख़जालत क़रार दिया जाता है
और वह
शबनम से गाली होजाती है

कोई एक ख़्वाब
आँखों में
इतने रोज़
दरमांदा रहता है
कि किसी मंतिक़
किसी एहसास को
मन में
रस्ता नहीं मिलता !
समझौतों का कर्ब
सहने वाले पर
कोई एक लफ्ज़
इतना गहरा घाव
लगा देता है
कि मन
दहाड़ें मारकर
रोना शुरू करदेता है
मंज़िल की तलाश में
लिया हुआ
कोई एक क़दम
सफर को
इतना तवील कर देता है
कि वापसी का
रस्ता नहीं मिलता !

तंहाई मेरा लिबास है
रिश्ते मेरे मन की
उतरन है
क़ुर्बतों का लम्स
दाइमी नहीं
तंहाई का लम्स
सच्चा है
पर मन पगला है
बच्चे जैसे रोता है
मुहब्बत पहनना चाहता है
दिल्ली की मुहब्बत
रात को सड़कों पे बिकते
गुब्बारों जैसी होती है
जिस की gas
आधी रात को घर पहुँचने तक
निकल जाती है
जानती हूँ
पर मन पगला है
बच्चे जैसे रोता है

गांधी शांति प्रस्थान है
जहाँ हर पलंग पर
हर गद्दे में
घास भरी हुई है
और बापू
आँख मूंदे हैं
तनाव में हवेली से निकली
60 रोज़ा मनकूहा
हर गांधियन के
90 साल
ख़ामोशी से पिसती है
बदलाव का कर्ब
रूह पे
लकीरें खींचता है
काग़ज़ पर खींची
लकीरों में
कोई खोया हुआ सपना
दफ़न नहीं होता है

इसी शहर की
इसी सड़क पर
एक हवेली थी 208
जहाँ चांदनी के पालने पर
बहुत सारे ख़्वाब थे
हर ख़्वाब की आँख
खुली थी !
इसी शहर की
इसी सड़क पर

वह जो हमने
एक दूसरे को Ring पहनाई थी
मुझे गुमां था
कि तुम मुझे
और मैं तुम्हें
पहन रही हूँ .....
इस से पहले कि
कोई हमें उरियाँ देखे
आओ
बारिश का पहनावा पहनें

जब तुम ने मुझे
अपने इहाते से खदेड़ा था
मेरे साथ
खुदा भी बे घर होगया था !
तुम
मेरी आँखों से दरमांदा ख़्वाब
हटा सकते थे
या फिर
मेरे मन के आंसू
पोंछ सकते थे !
मैं यूं
कश्कोल लिए
इस शहर में
अपनायितें न मांगती
जहाँ भगवानभी
भीक में
पैसे मांगता है
सड़कों पे !

उसकी दुनियां अँधेरी हो गई
तो मन की आँखों ने
रस्ते ढूंढे
इस के पैर कुचले गए
तो मन की बैसाखियों पर
वह चलता रहा
उसका मन टूट गया
तो दुनियां की भीड़ में
वह
मुअल्लक़ खड़ा होगया !
जिस्म की आँखों से
वह कुछ भी नहीं देख सका
जिस्म के सहारे
वह कहीं नहीं जासका
वह माज़ूर हो गया

ख़फ़ा होते हैं सब
मेरा सुजा हुआ
चेहरा देख के !
जब से मैं ने सारा बोझ
अपने शाने पर धरा
मेरा चेहरा फूल गया
दर्द का बोझ
शिर्यानों में
बिल्ली के पंजों के बल चलते चलते
मेरे चेहरे में आ पहूंचा
यह अब की नहीं
बीस साल की बात है
बीस पल भी कोई
मेरा बोझ उठाता
मेरे चेहरे की सुजन उतरती !
ऐसा नहीं करता कोई
ख़फ़ा होते हैं सब

मैं जिस्म पे Telcum नहीं
अपने वजूद पे
नमक छिड़कना चाहती हूँ
सदियों से जमी हुई
बर्फ काटना चाहती हूँ
क्या तुम रिश्तों का अलाव
दहका सकते हो?
मैं अपनी आँखों को
आंसुओं से
तलाक़ दिलाना चाहती हूँ
जो सदिओं से
आंसू काश्त कर रही हैं
क्या तुम मेरी आँखों को
ख़्वाब दे सकते हो?
ज़माने के बखेड़ों में नहीं
मन की दुनियां में
घर बनाना चाहती हूँ
बस अब
दिल की बात सुन्ना चाहती हूँ
क्या तुम मेरे मन में
बोल सकते हो?

किसी ज़मीन ने जज़्ब नहीं किया
किताबों की छत बनाना लाज़मी था
कितना भीगती?
कब तक भीगती
तुम ने मेरा ज़ेहन
अन गिनत सवालों से भर दिया था
और आँखों को
ख़्वाबों से ख़ाली रखा था
मैं कोई रोना नहीं रोना चाहती
अपने बे ख़्वाब आँखों का
तुम बार बार
उस दिन का रोना रोते हो
जब मैं पैदा हुई थी
मैं तुम्हारे हाथ से
गुस्सों कि तीली छीन कर
अपनी छत नहीं बनाना चाहती
दरे एहसास पे
दस्तक देना चाहती हूँ
तुम मुझे
अनगिनत सवालों के साथ
किस छत के निचे रखोगे?

तुमने मुझे इतनी बार मिटा दिया है
कि अब मैं
बिना किसी चेहरे के
जी सकती हूँ
लेकिन कोई मुजस्समा नहीं बन सकती !
अगर एक बार भी
तुम मुझे
पढ़ने के बाद मिटाते
मैं दुख तराशने कि मश्क़
नहीं दोहराती
तुम दूसरों को
दुख देने की सरशारी में
जी सकते हो
मैं बहुत सारे दुख तराश कर
कोई मुजस्समा बना सकती हूँ
एक बार
एक दुख की दुखन
तुम भी ले लो
मुझे किसी
दुख का चेहरा बनाते हो
लिख लो

रिश्ते सब के होते हैं
कोई अपना
सब का नहीं होता !
मौत सब को आती है
ज़िन्दगी
सब पे नहीं आती !
जब मन
घबराहट से सुझ जाये
तो ये नुस्ख़ा
बहुत काम आता है

उन्हें नहीं मालूम
जब भरोसा
यक़ीन , एतबार
खो जाते हैं
तो सफ़र कितना दुश्वार होता है
उन्हें यह भी नहीं मालूम
जब ख़्वाब
ख्याल, ख़ुशी
छिन जाते हैं
तो पैरों में
कैसी बेड़ियां पड़ती हैं
झुंड में होती तो
उनका हांकना मुझे
दौड़ा सकता था
भेड़ों से अलग हो जाने कि सज़ा
कितनी युक्ता है

मुझे छु रही हैं
पहली बार
किसी ख़्वाहिश ने
मुझे सहलाया है
कि मैं तुम्हारे मन में मुजल्लद हूं!
आखिऱी
या
पहले पन्ने के बदन से
कोई लफ्ज़ फैल भी सकता है
मुझे मेरी मन की क़ब्र में ही
पढ़ लो
नाविल नहीं
एक दर्द हूं मैं
जो ज़िंदगी से
ज़्यादा पथरीला है
दर्द कभी भी तुम्हारे मन से मिल सकता है
बस तूफ़ान का
कोई हलफ नहीं उठाना

पढ़ भी रहे हो
या यूं ही
मैं अपने वरक़ पलट रही हूँ!
किसी भी और सूरत में
मैं तुम्हें
सालिम नहीं मिलूंगी
आखीरी बार
तुम्हारी की लकीरें

लाओ ज़रा पहन लूं तुम्हें
तन्हाई उतार दी मैंने
बाहर कॉरिडोर में पड़ी सिसक रही है
अपने धीमे लहजे में
वह सारी दास्तान सुनाती
जिन्हें सुन कर मैं धीमी आंच पर
पहरों सुलगती थी।...
लाओ ज़रा पहन लूं तुम्हें
वह key hole से झांक रही है
जैसे हम मौक़ा पाते ही
अपने असल में झांकते हैं
इस से पहले कि वह
मुझे नंगा देख पाये
लाओ एक दुसरे दी असल में
शामिल हो जायें
मैं अपनी सारी शबनम
तुम्हारी पल्कों पे गिराती हूं
तुम मेरी सांसों की पगडंडी से
मेरे अंदर उतर आओ
मैं ढक जाउंगी
अपनी असल की अमां पाउंगी
लाओ ज़रा पहन लूं तुम्हें

जब हम किसी ख़्याल को
ज़िंदगी देने से रह जाते हैं
तो वह दफ़न हो कर
मन में क़ब्र बना लेता है!
एसी क़ब्रें
बिना कतबे के गोती हैं
और चरवाहे अक्सर
मवेशियों को
ऐसे क़ब्रिस्तानों में
चरवाते हैं
क़ब्रें अंधी होती हैं
ख़याल अंधे नहीं होते
वह क़ब्र से भी
झांकते रहते हैं
गुज़रते हुए हर पैर की
आहट का मज़ा लेते हैं
और हमें
फ़ारार देते हैं!

रूठ में
फैसला लेना
आसान तो होता है
पर रूठ में लिया हुआ फैसला
बहुत ज़ालिम होता है
वह ज़िंदगी की
किसी भी दस्तक को
हमारे मन तक आने की
राह नहीं देता
और मन
एक दिन
कुछ भी न उगने के
सूखे में
बंजर हो जाता है

जब मुसीबतें
एक पर एक आती जाती हैं
तब वह चुप की चादर में
छुप जाती है
जब मौजें
चट्टान पर
बहुत देर सर पटकती हैं
तो फिर ख़ामोशी की गहराई में
खो जाती हैं
मौला तेरे बन्दे
चुप की चादर छीन रहे हैं
ख़ामोशी को तोड़ रहे हैं
ज़िदगी की अमानत
यह दर्द चीख पड़ें तो

मन की मिटटी
जब ग़म की बारिशों में
मुसलसल भीगती है
तो दलदल में तब्दील होती है
फिर हर लै
हर दहन
बस फिसलती रहती है
जैसे आंख खुलने पर
ख़्वाब फिसलते है
ख़्वाब में जब मेरे
कीचड़ आया था
तो बूढ़ी अम्मां ने
तौबा तौबा की धुन में
कई ताबीरें निकाली थीं
अब ख़्वाब में कीचड़ नहीं
मेरे मन में दल दल आया है
और तौबा क्या ताबीर क्या
मन की उस माज़ूरी का
कोई भी
रियायत नहीं देता

अगर मुझे
किसी भी ज़मीन पे
पावों रखने का
कोई हक़ नहीं
तो क्या में
हवा की मानिंद
हर मंज़िल से
सरसराते हुए
गुज़र न जाऊं ?
ठहरूं तो जाह न दे
गुज़रों तो ताना दें
पनाह मांगती हूँ
उन सब से मौला
जो तुम्हारी बनाई हुई
काइनात के खुदा है

ज़िन्दगी
मुझे दस्तक देते हुए
दम तोड़ रही है
उस को जी लेना
सब कुछ सहने से
बहुत आसान था
बग़ैर तड़पे
सब कुछ सहना
सब से मुश्किल है
ख़ुशी का मर जाना भी
मुश्किल है
देखो में लफ़्ज़ तराशते तराशते
लफ़्ज़ों की ग़र्द में
दफ़न हो रही हूँ
मौत बांटते बांटते
मैं जी नहीं सकती।
मेरा जीवन और मुश्किल न करो
कि मैं मौत को
जीना शुरू कर दूँ
मौत से पहले मर जाना
बहुत मुश्किल है।

तुम बार बार
जीने की खातिर
मेरी मन की मिटटी में
मौत क्यों बोते हो ?
जो मिटटी तख़लीक़ का दुख
सहती हो
बाँझ नहीं होती।
तुम मुझ से
और कितनी नज़्में लिखवाओगे

लड़की
जब अपनी तलाश मैं निकलती है
अपने दुख खुद भोगती है
अपने ख़्वाब खुद बुनती है
तो मुनाफ़िक़
उस का मुक़दर
ग़ीबतों से बुनते है
खुदा भी मुदाख़लत नहीं करता।
यह हैरानगी
लड़की को
फालिज ज़दह करती है
और वह
अपनी तलाश खो बैठती है

वजूद के जो हिस्से
वजूद की तलाश मैं खो जाते हैं
उन का इंदराज
ज़िन्दगी के किसी भी फाइल में नहीं मिलता
हाँ उन नज़्मों में
जो आंसुओं की रोशनाई से
लिखी गई हों
वह हिस्से बसते हैं
लेकिन फिर हमें तारीकी को
अपना नशेमन बनाना पड़ता है
इस राज़ से ज़िन्दगी नहीं
वजूद वाक़िफ़ है
और हम
वजूद नहीं
ज़िन्दगी जीते हैं

मन की नज़्में

अब तो
हड्डियां सुन हो गईं
धुप की हरारत
सुन हड्डियों को अच्छी लगती हैं
पर मैं
आंखे चुराती हूँ
कि मैं बहन हूँ
सात साल छोटे भाई की
जिस के ग़ुस्से भरे तहक्कुम में
छब्बीस साल की उम्र में
मेरी आँखों से
काजल छूटा था
बेटी बन कर जीने वाली
बहन बन कर जीने वाली
धुप की हरारत क्या करना
आँखों की बसारत क्या करना
तुम्हारे साथ खड़े हैं आज
मेरी उम्र के तीस बरस

धूप अक्सर खलती है
हर बार आँखें चुराती हूँ
कि मैं बेटी हूँ
एक मसरूफ़ बाप की
जिस की बेतवज्जुही ने
मेरी बरसात
मेरी हरारत
बीस साल की उम्र में बुझा दी थी

तुम्हारी
खुश गुमां आँखों से
जो दुनिया देखी थी
संगमरमर की बांहो मैं
सुनहरे सपनों से सजी
खुनक हवा में
पलती रही ....
ख्वाबों की अफ्शां
आंखें बोझल करती रही
यूँ तो
बेख़वाबी
जन्म की बात हुई थी
न जाने
तुम्हारे लम्स से
.......अजब सी नींद
और फिर ये ख्वाब
जो तुम्हरी चाहत की
संदली चांदनी में भीगे
ताबीर लिए
जाग रहे हैं
अब तक

मेरी मौत
उसी पल हुई थी
जब तुमने
मेरी रुह को
मेरे तन से
निकाल फेंका था
यह मेरी
लाश है
मैं नहीं
कहीं तुम
अपनी आँखें भी ....
फिर कैसे देखोगे ?
मौत तो आहट है
काफी दिन हो गए
इस लाश को
उठाये फिर रही हूँ
आज
गली के कुत्ते
बहुत भूके थे !
मेरी मानो
इस लाश को पनाह दो
अपने ज़ेहन के
क़ब्रिस्तान में

सारा जग
सो रहा था
वह रात गए
नींद की लज़्ज़त से बेख़बर
तस्वीरों में रंग भरती रही
सुब्ह
कोई सारे रंग चुरा कर ले गया
अजब दीवानी थी
अगली रात
फिर रंग भरती रही
और अगली सुब्ह
फिर ....
वह अजब दीवानी है
जब भी रात आती है
रंग भरने की मश्क़
दुहराती है
और फिर सुब्ह ......

उठाये फिरती हूँ
कि एक -आध कटोरी
धूप मिल जाये
तो शायद
इस जन्म का सरमा गुज़र जाए
और बादल हैं कि
बरसों से
गरजते ही जा रहे हैं
यह जो एक ढेर है
मलबा है
सोख्ता ख़्वाहिशों का
आत्मा की कपकपी
मलबे में दब जाए गी
तू ने ए नसीब
अच्छा नहीं किया
जो मुझे
हर मंज़िल की दहलीज़ से
लाहासिली की माला पहना कर
लौटा दिया

अपनी लाहासिली की
सियाह कारी में
भीग जाती हूँ तो
जान ठिठुरती है
फिर कपकपाता वजूद
अलाप कर
न होने का कफ़न ओढ़े
कश्कोल

वह जो दूसरों की दुनिया के
खुदा होते हैं
एक बदन को न
जाने कितनी क़ब्रों में
बाँट देते हैं
और जब कभी वो
उन क़ब्रों के अज़ाब से
जागते हैं
ज़िन्दगी की
आज़ाद सांसों में
ज़िंदा ख्वाबों को हमकता देख कर
अपने अंदर धड़कना
छोड़ देते हैं
और फिर आहिस्ता से
उन्ही क़ब्रों की तह में
आकर बैठ जाते हैं
मगर
फिर भी
देखते रहते हैं
कि हर परिंदा
अपनी बोली
बोलता है

यूँ तो
सब की
अपनी -अपनी क़ब्र होती है
जैसे अपनी -अपनी दुनिया
और कौन
किसी की क़ब्र मैं दफ़न होता है
लेकिन

तुम्हारा ख़त पढ़ा ....
बार -बार पढ़ा
दिल धड़का ....
वह देखती तो
डर जाती
मन में शोर सा उठा ....
वह सुनती तो
मर जाती
मैं ने
उस का चेहरा तकिये से छुपा लिया
उस की आँख खुली,खफा हुई
और चली गई
......सुबह हुई
तो बिस्तर पर मौजूद थी
मेरे बग़ैर
किधर जाए गी
किस के यहाँ जाए गी
तन्हाई !

मैं
और तन्हाई
सो रहे थे
तुम्हारा ख़त आया
एक भारी पांव
तन्हाई के सीने पर पड़ा
चीख़ पड़ी
और लिपट गई मुझ से
उस की बाँहों की
क़ैद में

यह वही बस्ती है
जहाँ लोग
दस्तार-ये -फ़ज़ीलत बांधे हुए हैं
तुम्हें अपनी ही तन्हाई में जलना होगा
तुम्हें यहाँ
कोई भी
तुम सा नहीं मिलेगा
इस बस्ती की फ़िज़ा ही कुछ ऐसी है
कि वजूद का अंग-अंग
बिखरा देती है
और उस पर
जो तुम
खुद अपने आप को
ढूंढने चलो गे
तो
तुम पर
यह तोहमत होगी
कि
बहुत खुदनुमां हो

यह वही बस्ती है जहाँ
हर फ़र्द के ख्यालों का
बादबां खुला है
और जो
तुम
दीवार की क़ैद से
झांको भी
तो उंगली
तुम पर उठेगी!

दुआ करना
मेरे दोस्त
हम अपने जुनूं का
खुद ही नौहा न लिखें
दुआ करना
मेरे दोस्त
एक दिवार
जो अब भी फ़सीलें फतह है
कोई सैलाब -ए-बला न बहा ले जाए
दुआ करना
मेरे दोस्त

तुन्हें
ये रंज है कि
महकती झूमती रुत में
मेरी आंखें
नाच क्यों नहीं उठती'
तुम्हे
यह रंज है कि
फ़िज़ा में तैरती खुनकी
मेरी ख़्वाहिशात को
गुदगुदाती क्यों नहीं
मौसम कि इनायत का
मुझे अहसास है लेकिन
यह भी क्या बात हुई
जिस से तुम वाबिस्ता हो
उस से वाक़िफ़ नहीं
तुम्हारे होते ही मैं
ग़मों के हाथो नीलाम होइ थी
और नाउम्मीदी के लश्करों ने
अपनी पूंजी जोड़ के
मुझे तुम से खरीद लिया था

दुआ करना
मेरे दोस्त
हम अपने जुनूं का
खुद ही नौहा न लिखें
दुआ करना
मेरे दोस्त
एक दिवार
जो अब भी फ़सीलें फतह है
कोई सैलाब -ए-बला न बहा ले जाए
दुआ करना
मेरे दोस्त

तुन्हें
ये रंज है कि
 महकती झूमती रुत में
मेरी आंखें
 नाच क्यों नहीं उठती'
तुम्हे
 यह रंज है कि
फ़िज़ा में तैरती खुनकी
मेरी ख़्वाहिशात को
गुदगुदाती क्यों नहीं
मौसम कि इनायत का
मुझे अहसास है लेकिन
यह भी क्या बात हुई
जिस से तुम वाबिस्ता हो
उस से वाक़िफ़ नहीं
तुम्हारे होते ही मैं
ग़मों के हाथो नीलाम होइ थी
और नाउम्मीदी के लश्करों ने
अपनी पूंजी जोड़ के
मुझे तुम से खरीद लिया था

जागते है
तेरी नगरी मेरी धरती में
टूट कर कितने माहताब
खो गए हैं
हर शमा कि नज़र
धुंधली है
मेरी नगरी
सुलगती रेत
तपती धुप का सहरा
तपते सहरा में दर क्या
दरवाज़ा क्या
फासले काट कर आती हैं
दस्तकों कि सदाएं
लायक़ीनी के हाथों
जब हम इस शहर -ए-नापुरसान से
गुज़र जाएंग तब
तुम या फिर मैं
अपने गुमशुदा अक़ीदों कि तलाश में
एक दूसरे कि ज़ात के
शहरों में पहुँच जाएंगे

ए शहर-ए-निगारां
चाँद की नगरी
तेरी धरती में
लगते हैं
साँस के मेल
बसती हैं
दिलों के धड़कनें
जलती हैं
उम्मीदों की शमअें
आबादियों के मंज़र

कुछ तोड़ना भी अच्छा लगता है
जो टूटने से बच सकता है
क़त्ल हो जाता है
वैसे
क़त्ल होना ही जीने की सच है
और
उस लम्हे का सच यही है
कि सदियों बाद ऐसा वाक़िया हुआ था
कि रेत के ज़र्रे
उस की आँखों में चुभ जाने से रह गए
देखा तो
सामने भीड़ थी
शोर -वो -गुल था
और एक खोखली आवाज़
जो
दूर कहीं जा के
ज़िन्दगी का संतूर
छेड़ रही थी
मुझे लगा था
उस आवाज़ पे तुम्हारी आवाज़ का साया था

ढेर सारी
रेत के निचे दबी
एक रूह
देर गए
रेत हटाने की कोशिश में
अपने नाख़ून तोड़ बैठी
यूँ तो

तो कोई कोंपल ज़रूर फूटे गी
पर बरसात से पहले बिजली गिरी
और वह जल गया
मेरे दूसरे "मैं "के क़त्ल पर
एक और तख़लीक़ पा गया
मेरा तीसरा "मैं"
काली सदियों का
एक गूंगा है
जो सदियों की सरगोशी सुनने
रोज़ समुन्द्र में छलांग लगाता है
सफ़ेद झाग में मलबूस
मेरे पहलु में आ कर बैठ जाता है
और पूछता है कि तुम कौन हो
में फिर सोचती हूँ
में तो जब ही की क़त्ल हो चुकी हूँ
में कौन हूँ
क्यों कि हर क़त्ल ने
एक नई तख़्लीक़ को जन्म दिया
तो क्या मेरा "में"
हर क़त्ल के बाद
तख़्लीक़ पाया है
हर क़त्ल एक तख़्लीक़ है
तो किया हर क़त्ल यह नहीं बताता
कि में जी क्यों रही हूँ ?

जन्म लेती है क्या?
हाँ मेरा "मैं "कितने जन्म ले चुका था ?
वह जब पहली बार क़त्ल हुआ था
तो एक बंजर साहिल पर
कई रोज़ पड़ा रहा
फिर एक दिन क्या देखा
सूरज पर कोई हंस रहा है
यह मेरा "मैं "था
रूप बदल चुका था
पत्थर हो गया था
सोचा पत्थर बन कर
अब जीवन कट सकता है
पर पत्थर का रंग कुछ सलोना सा निखरा
किसी की नज़रों से बच न सका
फिर क़त्ल हो गया !
सूरज डूबने को था
वक़्त गुज़रता गया
और मेरा "मैं "
ठूंठ बन गया
ठूंठ जिस में न जाने
कितने सपनों का बसेरा था
लकिन हर सपना सूखा था
सोचा बरसात हो गी

कोई ज्ञान नहीं मुझे
मैं जी क्यों रही हूँ
मैं जी रही हूँ ?
कितने दिनों से मैं यही सोचती हूँ
मैं
कितनी बार क़त्ल हो चुकी
फिर किस उम्मीद की छांव में
ज़िन्दगी
बेफिकरी में गुज़रे गी
ज़िन्दगी बार बार

न जाने वह
किस सूरज का बदन
पूजने के ख्याल में
हर सूरज पर हँसता रहा
उसी बंजर साहिल पर
बिखरा पड़ा रहा
और फिर
न जाने कितने लम्हे
तुम्हारी
पुकार की राहों में
पत्थर हो गए
पत्थरों की नगरी
पत्थरों के पुजारी
पत्थरों के शहर
कोई पुकार
नहीं पलती!
पत्थरों की सरहदों में
तुम्हारी पुकार
लावारिस है

किसको पुकार रहे हो
तुम को ख़बर भी है
मिटटी समझ कर
जो शबनम
तुम
बिखरा के चले थे
पत्थर हो गई है !
.....उम्र के कितने सुर
तुलू होते रहे

उस दिन
जो तुमने
अचानक
मुझे पुकारा
न जाने कितने लम्हे
हैरान हो कर रह गए!
दिन ढल चुका था
सूरज डूबने को था
नहीं डूबा !
काश ऐसा
मेरी सोच के
घबरा जाने से पहले होता
तो शायद
झाग के कपड़े
पहन कर
यूँ
समुंदर में
गोते न खाते

बात "मैं"और "तू " कि कहां
मेरी और तेरी है
मैं
जो मेरी कुछ नहीं लगती
अक्सर सोचती हूँ
शायद तुम्हारा "तू " भी
तुम्हारा न था
न जाने कितने सजदों की ताबानी
चौखट -चौखट
बाँट चुका था
और ख़ामोशी कि चादर
ढके
मुझ को
तक रहा था
मैं अक्सर सोचती हूँ
"तू "वह न था
जिसे मैं ने सोचा था
तू ने या फिर शायद तक़दीर ने
तुझे सर -ता -पा ढक रखा था

अक्सर सोचती हूँ
वह
"मैं" के वजूद कि खोखलाहट थी
जिस में "तू "की आवाज़ गूंजती थी
मैं और तू
गुम-गशता ज़ात
पर

जुग जुग फिरता था
मैं
हर शाम
सुराही की हदें
पार करती
तुम्हारे होंठ
तरावत के ज़ायके लेते
जुग जुग फिरने की
थकन मिट जाती
पर हर जुग से लाया गया ज्ञान
तुम्हे स्वयं भगवान बना गया!
फिर तुम्हारे पथरीले हाथ उठे
कोने में पड़ी सुराही तोड़ बैठे
और चोट
पानी को लगी
बून्द-बून्द दर्द से तड़प उठी
सर पटकने लगी
तुम अपनी सूखी आत्मा को ले चलो यहाँ से
किन सोचों में डूबे हो
में उसी पानी की बूंद हूँ

किन सोचों में डूबे हो
हां
मैं उसी पानी की बूंद हूं
जो तुम्हारे कमरे के कोने में पड़ी
सुराही में रहता था
आख़िरकार
तुम्हारा समुंद्र
न जाने कितने दरियाओं का
प्यासा था और

आसमान ख़ाली होने का मंज़र
आँखों में समा रहा था
कि
आंखें मुद्दआ से ख़ाली
शहर -ऐ-आशुफ़्तग़ां के
सायों में खो गई
और मैं खामोश खड़ी
लम्हों के शोर में
गुम कि
फ़लक से ज़मीं पर
रात की स्याही
उत्तर आई
अंग अंग स्याही में
खो चुका था
कि दफ़अतन कोई गूंज
बे तरह शोर मचाती
सियाही में
शबनम खोजने लगी
और में ख़िज़ाँआलूद फ़िज़ा में खड़ी
शबनम के आंसू
रो रही थी

फ़िज़ा खिज़ां -आलूद हो रही
और मैं ख़ामोश खड़ी
हवा के हर झोंके से
जख्म खाती
शाम के
आवारा झोंकों की मुन्तज़िर थी ....
परिंदों की उड़ान से

तारिक ख़ला का वह सय्यारह
आन गिरा
किसी वीराने में
शिकस्ता दर -ओ- बाम
होलनाक तन्हाई
इन शिकस्ता से दर -ओ- बाम में
सूरज बहुत देर से
ख़्वाबीदा है
ज़ेहन का हर नक़्श
अनगिनत लम्हों की
मसाफ़त लिए
फ़िज़ा के आइनों में
हर बुझे अक्स का
मुन्तज़िर
कि शायद
इन शिकस्ता से दर -ओ- बाम में
ख़्वाबीदा सूरज
कुछ देर के लिए जाग जाये

अलमनाक उदास फ़िज़ा में
एक रौशनी की किरण
ठंडे लहू को
उबाल देती है
बे रंग सा सन्नाटा
भयानक साये
और सायों से उभरती शुआएं !
ठिठुरते लिबास में
मुंह छुपाती आवाज़
अंगड़ाइयां ले रही है
उफ़क़ ता उफ़क़
बादलों का हुजूम
बिखर सा रहा है
कि सायों से
उभरती शुआएं
अपना इहाता बढ़ाती जा रही हैं
और एक दिन
मेरे वजूद की
सारी सरहदें
पार कर जाएंगी

ज़ख्म आलूद पैर
बिन मंज़िल के
सफ़र में
हर पल गर्दिश में रवां
गर्दिश
रुक सकी है भला ?
कारवां के माथे पे
मंज़िल का परचम
परचम के रंगों से
उलझती कोई लाश
कैसे भर सकती है
पीप बहते ज़ख़्मों की
रंगों से उभरता धुआं
बेबसी का धुआं
गूंज उठता है
गुमशुदा अक़ीदों की
तलाश में

ख़्वाब की बुलंदी जैसा
सर -व क़द पेड़
गिर जाएगा
आंधी
थम तो गई
बदलते मौसम से
उखड़ी जड़ें
नमु कहाँ से लाएंगी?
उजड़े बसेरों की
कोई
निशानी नहीं
हद-ए-निगाह तक
खोखलापन
हवा के क़दमों में सर ख़म !

न जाने
वक़्त का कौन सा झोंका था
वर्क़
पलटते गए
लम्हे बिखरते रहे
लम्हों का बिखराव कितना मुश्किल है !
हर बिखरे लम्हे से
उस एक लम्हे की रोशनी
कितनी वाबिस्ता थी
जो
पलटते औराक़ की सतहों पे
ठहरा हुआ था
और बेहद
रौशन था

कहीं मैं
अंधी तो नहीं
वह सब
कहां हैं
काफ़िला
मंज़िल
फिर चलते -चलते
एक मुद्दत भी तो हुई
अब
सूरज भी
डूबने को हो गा
कहीं कोई पेड़ भी नहीं
जिस की छांव में
मुतमइन बैठ जाती
फ़क़त
एक सुनसान रास्ता
और
मैं
या अल्लाह कुछ नहीं तो
एक दराड़ मिले
जहां मैं छुप जाऊं
और बस

जब से
ढेर सारे दिन गुज़र गए
मेरी मौत
शुरू हुई थी
पहली क़िस्त में था
मासूम ऐतबार
जिस की मौत ने
रंग चेहरे का
चिराग़ आँखों के
धुंधला दिए
दूसरी क़िस्त में था
एतिक़ाद
जिस की मौत ने
साठ साल का बना डाला
और अब मैं
मौत की तीसरी क़िस्त के इंतज़ार में बैठी
धूल भरी ज़िन्दगी गुज़ार रही हूं

उजड़े रास्तों की
धूल भरी
ओढ़नी में
लाखों
धुप के टुकड़े आते
और झिलमिलाते
वह शांत खड़ी
हैरान थी कि
बादलों का कोई मनचला टुकड़ा
बरस पड़ा
उजड़े रास्तों कि सारी धूल
धूल गई
और
ओढ़नी
तार- तार हो गई

जो
झांकते थे
मेरे आँचल से
हर शाम
वह साया
उन दायरों में उभरता
और वह दायरे
उस साये में
फिर कोई
घुँघरू बांधे
दायरों के
उस साये में
साये के उन दायरों में
रक़्सिंदा रहता
और
रात
गुज़र जाती

एक साया
खद -ओ-खाल से मेरा था
मुझ से ही
हिसाब मांगता था
कुछ ज़ख्मों का
और कुछ
दायरे थे

वह जो
तेज़ धुप के
खुरदुरे रास्तों पर
बे रंग हो गई थी
एक वक़्त की
सत रंगी
ओढ़नी थी
बे रंग को दुनिया
किसी भी रंग में
रंग देती है
एक दिन
वह भी
रंगरेज़ के हाथों
रंग गई
और ....
ओढ़नी फट गई

यादों के काले सागर में
एक टूटी कश्ती
डगमगाती रही थी
कि हमने
कुछ दिए रोशन किये
बिखरे ख्वाबों से
टूटे आईने जोड़े
और फिर
अपने चेहरे में
कितने चेहरों को
देखा
किसी चेहरे को
पहचान न सके

मैं समझी थी
दोनों का
अंजाम एक है
बारिश की बूंदें हूं
या
आंसुओं के क़तरे
साथ बरसते
बंजर सुलगते
रेगिस्तानों की प्यास
बुझती नहीं
हर सिम्त
पर फ़ैलाने का आदी
बादल का वह
मंचला टुकड़ा

कैसा सपना था
उस के
हाथों मैं
बीते लम्हों का आइना था
मैं
जैसे
हर उस लम्हे को छू रही थी
कि कुछ
चेहरे जगमगाए
जिन की मुस्कराहट में
मेरा
हर सुख
जुड़वा मोतियों जैसा था

जब तुम ने
अपनी रिफ़ाक़त से
उस की अफ्शां
भरी थी
एक
नये पन की खुशबु से
फ़िज़ा मुअत्तर हुई थी
और वह
तुम्हारी रौशनी में
नहाई थी
फिर
तुम और वह
धुंध की महीन लहर जैसे
एक दूजे के
रग-व-पै में
सरायत करने लगे
आज
वह जज़्बा
एक तलाश
उस के आगाज़ की
उस के अंजाम की

एक दिन
ढेर सारे जख्मों को
वह
दफ़नाने चली
सहरा -सहरा घूमी
रात हुई
एक सूखे पेड़ के
दमन में
आसूदा नींद सो गई
सूखा पेड़
मग़रूर हो गया
छांवों के गुमान में
बाहें फ़ैलाने लगा
तो वह जाग गई
मग़रूर न हो
इस आसूदगी में
थकन है जन्म जन्म की
फैली बाहें
टूट गई
और
वह
क़ैद हो गई

यहां से वहां तक
सब ने
जलते सूरज को देखा है
किस ने
उस के
सोज़ को पहचाना
आ मेरी तन्हाई
फिर रात ढलेगी
सूरज चढ़ेगा
उजाला हो गा
तेरी मेरी सरगोशी
रुस्वा हो कर
रह जायेगी

आ
मेरी तन्हाई
शाम
साथ ही बितायेंगे
एक दूसरे की
आग़ोश में
सब कुछ
भूल जायेंगे
कौन उतरे गा
तेरे बग़ैर
दिल के अंधे
गारों तक

अक्स

दिल में कैसा है
किस का है इंतज़ार
बरसों गुज़रे
उस साये में
रकसंदा हूं
रंग चेहरे का
चिराग़ आंखों के
धुंधले पड़ गए
कोई खुदा
न हमसाया -ए-खुदा
हर लम्हा
एक बार -ए -गिरां
दूर तक
सुनसान रास्ता
गर्द आलूद!

उजड़े रास्तों की
धूल से
खटकती आंखें
क़ुरबत के
पलों की
दिल पे दस्तक
ख़ामोशी में
लत -पत कमरा
दुरी के लम्हों में
लिथड़ी यह रात
गुमां
तेरी खुशबु का
और मैं

उसी सच्चे नूर की एक लौ थी
तुम्हारी चमक
उसी के माथे का सूरज थी
तुम्हारी महक
उसी के वजूद की ख़ुश्बू थी
यह तुम ने क्या किया
जो उस को मार डाला
झुलसती धुप और
पत्थर की बारिश से
तख़लीक़ किया गया
वह शख़्स
पतझड़ भी
अपने दामन में भर लेता है
कितना सच्चा था
उसी की रोशनी से
रेत के ज़र्रे
मुनव्वर हुआ करते थे
उसी की बशारत से
दुख झूठे हो जाया करते थे
यह तुम ने क्या किया
जो उस को मार डाला

यह तुमने क्या किया
जो उस को मार डाला
दर्द वो -अफ़कार
चुन के अपने दामन में
संभालने वाला
वह शख़्स
कितना सच्चा था
तुम्हारा हुस्न

सब लफ़्ज़
मेरी आँखों के सामने से
नहीं गुज़रे हैं
मैं
तुमको
कैसे पहचानूं ?
और जो गुज़रे हैं तो
आंखें धुंधला गईं !
फिर लफ़्ज़
खुद भी तो
मुन्तशिर होते हैं
अल्फ़ाज़
कैसे जोड़े जायें

जिस के हर क़तरे से
रग-रग मचलती थी
वह बिसात -ए-शेर -ओ-नग़्मा
कायनाते- ए -नूर
खो गई एक दिन
बाक़ी
खराबे रहे
वादियां
तीरह-ओ-तार हो गई।
मैं उसे
आवाज़ देती रही
सदा -ए -बाज़गश्त
बेनाम सहराओं से लौट कर
मेरे लरज़ां वजूद से
टकराती रही

हवा गुनगुनाई थी
फ़िज़ा मुस्कुराई थी
हिरे मोतियों से हसीन
उन
लम्हों के सर पर
वक़्त का खंजर पड़ा
और खून टपका
जो मुंजमिद है
आज भी
उस कमरे की दहलीज़ पर

आज़माइश बजा सही
पैमाने सब्र के
छलकने का
एहतिमाल ही होता
तो शायद
यूं
बेएतिदाल न होते

शहर पुरहौल
शिकस्ता हॉल तमन्नाओं का अज़ाब
मुकफ़्फ़ल दरवाज़े
लहू की दस्तक
शहर -ए -दिल के पत्थर पर
खुदा हर्फ़-ए -अना
सिवाए लिपटने के
अपने साये से
क्या करते

वह अक्सर
मेरे सहराओं में
दुहाई दिया करती
न जाने उसे
क्यों
तअल्लुक़ था मुझ से
अपनी खुशबु से वह
उदास लम्हों को
शबनमी बना देती
और
मुझे लगता
कि
फूल ,सब्ज़ा .घटा
सब मेरे लिए हैं
रंगीन फ़िज़ा
महकी हुई धनक
ख्वाबों का जज़ीरा
मेरा है
पर वह सदा
एक साया थी
जो उदास शाम में
ढल गई

और फिर
सूरज
कई रोज़ रूठा रहा
वादियां
ज़ुलमतों में डूबी रहीं
काली परछाईयों ने
रास्ते घेर लिए
हम उस को आवाज़ देते रहे
और यह आवाज़
बेनाम सहराओं से लौट कर
आ गई
हम मंज़िलों मंज़िलों
खाक उड़ाते रहे
और फिर यूं हुआ
चेहरे
उसी ख़ाक में अट गए
आँखों में में तीरगी छा गई
वह और हम
एक दूसरे से
अजनबी हो गए

वह परतौ-ए-नूर
जिस ने
खाना -ए-दिल के चिराग़
जलाये थे
खो गया एक दिन
देर तक
उस की तस्वीर बुनती रही
खराबे में जश्न होता रहा

मैं साहिल पे खड़ी
खामोश सदायें
सुनती थी
कि कोई मौज
रेत के फासले काट कर
एक फूल खिला गई
मुझे
शिद्दत -ए -अहसास ने
छूने न दिया
पर
वह फूल था
उस का लम्स
खुश्बू कि तरह
फैलता चल गया

सूखे पौदे
सींचने को
कहा था उस ने
फिर मुअजज़ा ये हुआ
कुछ फूल
खिल उठे
और फ़िज़ा में
खुश्बू बिखरने लगी
मेरे ही कमरे में उतरी
तकिये से ख़्वाब उड़ा ले गई
कि
जब से अब तक
मैं
बेख्वाबी की शिकार
किसी नामुराद खोज मैं रुकी
उदास लय में
पुकारती हूं उसे

जब तुम
बे रास्ता जंगल में
मुझे छोड़ के चले गए थे
मैं तुम्हारा नाम
बहुत दिनों तक
हरे दरख़्तों पे कंदा करती रही
फिर यूं हुआ
दरख़्तों के गिरते पत्तों में
तुम्हारे नाम का हर हर्फ़ छुप गया
और मैं
गिरते पत्तों के उस ढेर में
तुम्हारा नाम तलाश करती रही थी

बे सिम्त
सफर के ज़ाविये
लम्हा -लम्हा
हड़प रहे हैं मुझे
इक अनदेखी खोज में
बेचैन
दलदल में
फंसी हूं
महज़
इक कीड़े की तरह
जब की
मेरा मक़सद
कीड़ों की तरह जीना नहीं है

इसे ना तोड़ो
तुम्हारी कड़वाहटों को
शबनम में गुंध के
ये गुड़िया बनाई है
इस की चमकती हुई आंखें
तुम्हें बटन लगती हैं
मैं
कि जिस ने आज तक
तुम्हारे मन को
कुछ भी करने से नहीं रोका
उस दिन भी नहीं
जब तुमने
मुझे गुड़िया समझ के
मेरे बाज़ू .टाँगें और सर
फ़ेंक दिए थे अलग -अलग कर के
लेकिन आज
इस गुड़िया को
मैं तुम्हें
तोड़ने नहीं दूंगी!

Digitized By e Gangotri and Kashmir Treasure

चलते चलते
पाओं छलनी हो गए
बिन मंज़िल के
सफर कितना दुश्वार है
हर राह
धूप बरसाती हुई
क़ातिल लग रही है
पर
चलते रहना
अज़ल का लिखा है
ज़रा रुक गई
तो
थक जाऊंगी
देखो मुझे
आवाज़ मत देना

रात ढलती रही
मैं बुझे सितारों को तकती रही
नक़रइ नदियां
कोहसारों से बहती रहीं
अंधेरों में गुम होती रहीं
कहकशां
हुस्न -ए-आलम सजती रही
और मअदूम हो गई
चांद ने
झुक कर सर्द माथे को छू लिया
फ़िज़ा और तारीक हो गई
मैं
गुम सुम बहुत देर तक लेटी रही
और याद
सूखे फूलों की पत्तिओं से
मेरे वजूद को ढकती रही

रात का पिछला पहर
ख़ामोशी से
सरकता रहा
गर्म बरसात से
तकिया भीगा क्या ....
और
कुछ मंज़र थे
चिराग़ जलने के
जो आंसुओं को दामन देते रहे

Digitized By e Gangotri and Kashmir Treasure

एक छत के नीचे
कई कमरों वाला
घर
नहीं चाहिए था
यह तुम ने
क्या कह दिया
कुशादा हलकों से
खुद को
ढूंढ़ लाई थी
मैं
खोना नहीं
जीना चाहती थी
तुम्हारी
बांहों के छोटे से हिसार में

तुम्हारी बेतवज्जही ने
मेरे
मनचाहे वजूद को
जिस अन्जान सड़क पे फेंका था
वह अब
मेरी मंज़िल है
यह तुम मुझे साथ ले कर
किस नए सफर की तैयारी में लगे हो

तुझे
देख के
यूं लगता है
जैसे चांद उतरा हो
मेरी ज़िन्दगी की स्याह रातों में
जिस की
शफ़्फ़ाफ़ खुनक किरनों से
मेरा वजूद
रोशन हुआ जाता है
तू
मेरी रूह का
नग़मा
तेरी ज़ात से
आबाद
मेरा वजूद

ज़बान पर
हर्फ़ धुंधले हैं
आँखों में
फासलों की धूल चुभ रही है
बारिश और आंधी के
इस चीख़ते शोर में
मुझे कौन
तेरे गांव
चंद लम्हों के लिए ले जाएगा?

हरे पेड़ों की बाहें
रफ़्ता -रफ़्ता
बेलिबास हो रही थीं
तुन्द हवायें
ज़मीन पे फैले पत्तों से
लिपट कर
ख़ामोश हो गईं
और
धूप का एक
उरियां टुकड़ा
उदासी में लत-पत
मेरी खिड़की से टपका
तो सुनसान कमरे में
एक ताज़ा
कोंपल खिली
यूं कुछ हो जाना
कितना मुख़्तसर होता है
और
हो जाने का भुला देना
कितना तवील !

तुम बोलते
तो मेरी तन्हाई
मुझे
डसने से रह जाती
और शायद
तुम्हें भी
तुम्हारा अकेलापन
कुछ देर
नहीं सताता
वरना किस वजूद की आवाज़
ज़िन्दगी के कानों तक जाती है
ज़िन्दगी की नगरी
पत्थरों की नगरी
न दीवारों के कान
न दस्तकों की आवाज़

जिस्म की ओढ़नी में
ढकी
एक बुझी सी रूह
किसी याद की चादर से
झांकती है
ढेर सारी रेत
आंखों से गुज़र जाती है
आसमां छू लेने की
बेकार कोशिश में
बादल के
आंचल से
लटकी
वह
धूप के रस्ते पे
शबनम मांग रही है

इस रास्ते से भी
बस
गुज़र जाऊंगी
मेरे साथ
हर साहिल तक
हम सफर हैं
कुछ ज़ाविये
कई बेसिम्त मुसाफ़तों के
मैं तुम से
तुम्हारी
तन्हाई नही मांगती

आधी रात
कोई मेरी ज़मीन पर उतरता है
रोशनियां बिखेरता है ....
झुलसती घूप मैं
साया बन के
फैल जाता है
दुनिया की भीड़ में
वह कितना नुमायां है

कभी चांद की सूरत
मेरे ग़म के अंधेरे में
उतर कर देखो
क़ातिल की तरह तुम न सोचो
जीने का फिर कोई हौसला बख़शो
अगर तुम चाहो
मेरे वजूद में
अपनी शफ़ाफ़ खुनक किरनों से
नूर फैला दो
फिर कोई स्याह शाम
न आने दो
अगर तुम चाहो

बिस्तर
एक बेख्वाबी का सहरा है
सन्नाटे फांकते- फांकते
टूट कर
बिखर जाती हूं
हर रात
प्लास्टर ऑफ़ पैरिस की
सफ़ेद तह
खुद पे चढ़ा लेती हूं
और जब
सुबह होती है
तो
बिस्तर पर
एक लकीर पाती हूं
जिस का तसलसुल
हज़ार खानों में बट कर भी
बाक़ी रहता है

न जाने
क्या खरीदने
घर से चली थी
कहीं कुछ भी ऐसा बाज़ार में नहीं
जो दामनगिर होता
अब
खाली हाथ
तमाशाई बनी
हर बाज़ार से
गुज़र जाऊंगी

हर बार
उस को
उसी समुन्द्र में ले जाते
फिर किनारे से
जितनी आवाज़ें
तुम
देते रहे
उस के बदन से गुज़र कर
लहरों पर
नक़्श हो गई
तुम आवाज़ों की लहरों में
एक डोलती लहर
और
वह भी
शायद
समुन्द्र की तारीकी का
कोई छलावा थे

काले समुन्द्र से
जब भी
वह
किनारे पे आती
तुम अपनी दलदल से

जब से
तुम ने
यह नगर छोड़ा है
धुप रूपोश है
....उसी की हरारत में
तपती धूल
मैं पहनती
उसी की मसाफ़तों को
ओढ़ती थी ....
अब मैं उरियां हूं!
सेहन मैं फैले कपड़े अभी तक
गीले हैं

जानती हूं
तुम्हारा घर
आबाद है
फिर भी
कहीं कोई वीरान सा गोशा हो तो
मेरे नाम
लिख देना
जहां मैं
उजड़े रास्तों की
धूल भरी पोटली
खोल कर
कुछ धागे चुन सकूं
और
उन धागों से
अपने ज़ख्मों के खुले हुए होंट
सीने की मश्क़ दोहराती रहूं

हो न हो
सूरज भी
काली सरकश नदी की
तह में बह गया हो
फिर
दिन होने का क्या इमकान
और रात है कि
पूछ रही है किधर जाओगे
शाम के आवारा झोंकों से
बिछड़ा दामन
रात को गले लगा के
साये के मानिंद
स्याह रात में

खो गया था

तुम क्यों एहतिजाज करते हो

पूछ सकती हूं क्या ?

आंखों की जुस्तजू

चाहत

इबादत

ख़्वाब -वो- ख़्याल

तुम

अपनी स्याही में

गूंध चुके थे

उसी नज़र को

रोशनी के इन्तेज़ार में

सजा रहे हो!

तुम

सूरज का इश्तेहार

क्योंकर बने हो

पूछ सकती हूं किया?

तन्हा हूं
और
तन्हाई तुम से मुख़ातिब है
तुम अपनी सांसों में बसी खुशबु से दूर
अपनी तन्हाई की एक शाम
मुझे दे दो
साये की सूरत दूर भटकती हुई इस ज़िंदगी को
अपने वजूद के किसी तारिक गोशे में छुपा लो कि
तुम जिन बेमंज़र रास्तों से गुज़रे हो
मैं भी उन्हीं रास्तों में उड़ती हुई धूल हूं

जब भी तो अंधेरा था
और मैं
चली जा रही थी
आज भी अंधेरा है
और
मैं चली जा रही हूं
हां
तब आंखें बंद थीं
आज आंखें खुली हैं

मुझे ख़्वाब देखने की
इजाज़त नहीं है
और ज़िंदगी करने
की इजाज़त है
इस धोके में
मैं भभक रही हूं
जलने और बुझने के दरमियाँ
सांसें ले रही हूं
ज़िंदगी मेरा चेहरा तकती है
जैसे वह यह जानती ही नहीं
कि उस में समाने कि लिए
ख़्वाब देखना उतना ही ज़रूरी है
जितना दिये के जलने के लिए तेल का

कितनी बार उखाड़ो गे उस को
कहीं तो जड़ों को नमू लेने देते
बार-बार उखड़ने के दर्द से
वह ज़मीं में
फैल नहीं सिकुड़ रहे हैं
और तुम पत्ते गिन रहे हो
ज़रा सा ठहर जाते
वह पेड़ अपने फूलों से
सारी फ़िज़ा मोअत्तर करता
और तुम
उस के साये में
टेक लगाते
यूं हांप नहीं रहे होते
उस को उखाड़ उखाड़ कर

मुझे ज़िंदगी जीने की मुमानियत है
ज़िंदगी से जूझने की मुझे
इजाज़त है
में बार -बार कोशिश करती हूं
जीने की मुमानियत के बावजूद जीने की
उन की चालाक चाल के सामने
मेरी कोशिश कितनी बेकार है

मैं बचपन में
दो क़लम एक साथ मांगती थी
मेरे दादा खुश हो जाते
और मेरी मां भी मुस्कुराती
पापा नाना बनने से पहले
बच्चों के खेल में दिलचस्पी नहीं लेते
में दो -दो हाथों से लकीरें खींचती
एक दिन मेरे हाथों
औरत बन गई
जिस के हाथ पैर ही नहीं

दिल और दिमाग़ भी दिख रहे थे
फिर उस की तहज़ीब करने में
मेरी छत्तीस रातें गुज़र गईं
सैंतीसवीं रात
पापा मेरे खेल में शरीक हुए
मुड़े -तुड़े काग़ज़ जैसे
उस औरत को
अपनी जेब में ठूंस लिया
मैं मलाल में
अपने दोनों क़लम तोड़ बैठी
अब औरत नहीं
फूल बनाऊंगी
काग़ज़ी फूल
जिन्हें न कहीं मिटटी की ज़रुरत
न हवा ,रोशनी और पानी की मोहताजी हो
फिर जो जहां चाहे
उन्हे रख दे
या सजा दे

मेरी आंखों में
ख़्वाब हैं या अंदेशे
तुम्हें सोचना हो गा!
मेरे सामने
मुस्तक़बिल है या
मुस्तक़बिल की धूंध
तुम्हें सोचना हो गा !
मैं ने ज़िंदगी गुज़ारी
या मौत बसर की
तुम्हें सोचना हो गा!
क्या बाल-बराबर लकीर
खींच सकते हो?

मैं रुकी हुई हूं
तुम भाग रहे हो
यह मंज़र बहुत है
उम्र भर हैरान करने को
मैं अपनी और तुम्हारी उम्रों का
रब्त निभाना चाहती थी
तुम तेज़ रौ पानी की तरह बह गए
तुम में खड़े होने में
मुझे ज़्यादा वक़्त नहीं लगा था
मेरी सांसें जल्दी उखड़ गई थीं
बहुत दूर तक
मैं तुम्हारे साथ बहती रही हूं
मुझे साहिल पर क्यों फ़ेंक रहे हो
मैं तुम्हारा झाग नहीं
जो थक हार कर रेत पर सो जाऊं

टूटे धागों को जोड़ने पे
गांठ तो पड़ती है
नहीं तो
तुम भी अपने वजूद के टूटे हुए धागे का
सिरा खोल दो
मैं भी
अपने वजूद के धागे का आख़िरी सिरा
उधेड़ देती हूं
दोनों सिरों को
एक दूसरे को बुन दें
गांठ नहीं पड़ेगी
हम दोनों
बिना गांठ का एक वजूद बन जाएंगे

मेरे शहर में
ऐसे लोगों का कोई क़हत नहीं है
जिन्हें मेरी शिनाख़्त
अपनी पहचान से ज़्यादा अज़ीज़ है !
तुम्हारे हाथों में आ के
तुम्हारे शहर में
मैं अपनी पहचान गंवा भी दूं
लेकिन मेरी महक नहीं छुपेगी
मैं इत्रदानों से मांगी हुई खुशबु से नहीं
रफ़ाक़त की दिलगुदाज़ खुशबु से मुअत्तर हूं

रफ़ाक़त ये नहीं
कि रतजगे मुझे दे के
तुम अपने ख्वाब
दुल्हन कि तरह सजाते रहो
अपने लॉन में
खुशबु के गुल -बूटे बोते रहो
और मुझे
दीवानगी देते रहो
ये कैसी हमनशीनी है ?
हंसी शामें
तुम अपनी निगाहों में उतारते रहो
और मुझे
जलती हुई यादें भेजते रहो
तुम मुझे
अपना हमनशीं क्यों कहते हो ?

बहुत देर तक चलती रही हूं
कोई महक नहीं मेरी
कि तुम्हारा सेहन मुअत्तर हो
सारा रास्ता ,धुप
मेरी खुशबु
उड़ाती रही ....
आबला पा
तुम्हारी दहलीज़ पर खड़ी सोचती हूं
बिना महक के
तुम मुझे कैसे जानोगे
खुशबू ही मेरी पहचान थी

नहीं सोचती कुछ भी
मरे सोचने से बहुत पहले
तुम ने मेरे बारे में
सारे फैसले कर दिए होंगे
मैं क़ादिर नहीं ताबेअ हूं ....
पर तूम इस बात से तो ग़ाफ़िल नहीं
कि मेरी आरज़ूओं का खून हुआ है
मेरी हयात बदनुमा हो गई
धुंध और कोहरा
मेरे अंदर जम रहा है!
इस पुरहौल सन्नाटे में
एक अंधी रफ़ाक़त का
इक़रारनामा लिखवाने से पहले
मेरी रगों में दौड़ते लहू के बदले
रेत और मिट्टी भर दो

जिन गुत्थिओं में
उलझ गई हूं
तुम उन गुत्थिओं को
सुलझा देते
यह तुम्हारे बस में था
में बेटी बन जाती
कुछ फूल चुनती
गीत गाती,मुस्कुराती
कोई ख्वाब देख लेती
ख्वाबों की ओस में भीगती हुई
किसी साहिल पर
ठुमक -ठुमक के चलती
अब जब कि मैं कुछ भी नहीं
बन पाई हूं
तुम मुझे
गुत्थियों को सुलझाना सीखा कर
और उलझा रहे हो

वह लोगों को रोता देख कर
हंस पड़ती है
और जब
उसे हंसना होता है
किसी को भी रुला देती है
आज उसने
मुझे रुला दिया
जब मेरी आंखें
रोते -रोते सूज गई हैं
तो कहने लगी
अब मैं जी उठी हूं
ताज़ा हो गई हूं
मैं लरज़ गई
अल्ल्हा तेरे बन्दे
कैसी कैसी ग़िज़ा लेते हैं
खुद को ज़िंदा रखने के लिए !!

मैं घर से
किसी दूसरे की नहीं
अपनी तलाश में निकली थी
और तुम्हारा
हर सबक़ तुम्हारे बारे में था
तुम ने
मेरी आंखों में
चांदी के सिक्कों का काजल लगाया
ता कि

में देख न सकूं
आसमान को छूते हुए
लामहदूद रास्तों को
तुम ने अपने वजूद की
सारी कड़वाहटों को निचोड़ के
मेरा गिलास भर दिया
और उस कड़वे रस को पी कर
मैं
न सिर्फ उड़ने की चाहत
बल्कि अपनी ज़ात भी भूल गई
लकिन अब
जो मेरी फैसला करने की सलाहियत
मुझ से छीन रहे हो
ये जो जलते पत्तों के धुएं से
मुझे ढक रहे हो
देखो तुम्हारा कमरा
मुझ पर इख़्तियार की
मसनूई रोशनी में चमक रहा है
और मेरे ज़ेहन की रोशनी
बुझ रही है

तुम ने जो रोटी मुझे खिलाई
वह मेरी सोच और फैसला करने की ताक़त
मुझ से छीन कर, तुम ने खरीदी थी
जिस चाहत के चश्मे का पानी
तुम मुझे पिला रहे हो
मेरे जिस्म की आमादगी से फूटता है
मेरी तिशना रूह
मेरी नसों को चाट रही है
मैं सिकुड़ रही हूं
और तुम्हारी आरज़ूओं की रगें
किसी ख्वाब के नशे की तरह
फैल रही है

वह सिर्फ वैसा करता
जैसे वह सोचता
लेकिन राय
हर शख्स की ज़रूर लेता
मशवरा अपनाइयत की अलामत है लेकिन
मुझे खौफ आता है कुछ कहने से
उस के फैसलों की तलवार ने
मेरी सोच को ज़ख़्मी कर दिया
अब मेरी आंखों में
खवाब नहीं अंदेशे हैं
मुझे खौफ आता है कुछ कहने से
मैं डरती हूं कोई मेरे लफ़्ज़ों से मफ़हूम
और मेरी सोचों से खुदआगही
छीन ले गा

वह एक शब थी
कि आसमां
अपना मर्तबा भुला कर
मेरी ज़मीं पर उतरा था
उस ने अपने सारे तारे
मेरी ज़ुल्फ़ों में टांक दिए थे
और मीठे शब्दों का
शहद पिला कर
गहरी सतरंगी
नींदें मुझ पर बरसाई थीं
मिट्टी कितनी गीली हो गई थी
उजाले कितने रोशन हो गए थे
और फिर फैले उजालों में
तहलील किया था मुझे उसने

यह मैं तुम्हें देख रही हूं
या ....
यह मेरे इर्द -गिर्द तुम्हारी परछाइयां हैं
या ....
यह तुम इक़रार की रेत पर मेरा नाम लिख रहे हो
या ......
यह तुम चिनार के सूखे पत्तों से मेरे लिए आग रोशन कर रहे हो
या........
यह तुम मेरी आंखों को ख्वाब दे रहे हो
या ....
सुनो , मैं जिस रोज़ या ......के बाद के ख्यालों को
नज़्म करने के क़ाबिल हो जाऊंगी
खुद को शायर समझने लगूंगी

रंग के बिन
बात के झरने
जागते रहने की वह रुतें
सब
यकजा है आज की शाम ......
सोचती हूं
उन्हें
अपने हाथों की अंजली मैं भर दूं
मगर डरती हूं
कहीं ये सब
मेरी बेताब उंगलियों से
टपक न जाएं वसुअत फ़िज़ा में......
लाओ तुम भरोसा का धागा ला दो
मैं धड़के की सुई से
उन को पिरोऊँ
एक रिश्तये वफ़ा में

आंधी
बिजली
ओले
सब तुम्हारी ख़ुदाई
पर मैं मुझे
इस क़हर से
क्यों बचाऊँ?
ढह क्यों न जाऊं
सब महव है
" लिबास नुमाइश " में
मौसम अपना मिज़ाज
तय न करे
पहनावे कैसे चुने जायें
एक तुम्हारी ख़ुदाई
एक तुम्हारे लोग!

तुम
मुझ में
उग सकते
खिल सकते
लहलहा सकते
जज़्ब हो सकते थे
मैं तख़लीक़ की मिटटी हूँ
Casino की टेबुल नहीं
कि तुम मुझ पर दाव लगाओ
जीतो
कि दिवालिया हो जाओ

क्या मालूम
धोखा तुम्हारे साथ हुआ है
या मेरे !
धोखा जीना
बहुत मुश्किल है

तुम्हारे लिए भी और
मेरे लिए भी
तारे मुझ से भी
उतने ही दूर है
जितने तुमसे
जिंदगी का सच
मौत है
तुम्हारे लिए भी
और मेरे लिए भी
फिर तुम
या मैं
क्यों न धोखे को
तक़दीर कहें
और जीवन
आसान करें

मैं ने तुम्हें
तुम्हारी ज़िंदगी
तुम्हारा जुनून
तुम्हारा रूठ
कुछ भी जीने से रोका नहीं

तुम मुझे
रोटी खाने से रोक रहे हो
तुम
झूठ, दिखावा, गुस्सा
कुछ भी लेकर
जी सकते हो
मैं सिर्फ साँस
और रोटी का टुकड़ा ले कि
जी सकती हूँ
पर तुम मुझे
मरता हुआ ही
देख के
क्यों जीते हो ?

जिस पल माँ ने जन्मा था
साँस लेना
हक़ अपना समझा था
मैं ने !
अब साँस लिए हुए

चालीस साल हो गए
और तुम्हारी आवाज़ सुने हुए
पुरे चालीस दिन
तुम्हारी आवाज़ सुनना भी
तुम से निकाह करके
अपना हक़ समझा था
मैं ने !
सांस और आवाज़
गिरवी क्यों होते हैं
बिना सांस लिए हुए
बिना तुम्हें सुने हुए
मैं जी तो रही हूँ
फिर बल क्यों पड़ रहे हैं
कहीं जीने और बहने में
फ़र्क़ तो नहीं ?

हमारी रात
क्यों बट गयी ?
तुम्हारे हाथ एक टुकड़ा
और मेरे हाथ एक !
रोटी की तलाश में

जो हम
मुट्ठी खोलें
कहीं खो न दें
रात के टुकड़ों को
तुम
या
मैं
लाओ तुम भी
सुबह की दहलीज़ पर
खड़े हो जाओ
और मैं भी !
रात के टुकड़ों को
जोड़ दें
और फिर सुबह
रोटी की तलाश में
दोनों खो जायें

तुम्हारी ना मौजूदगी
मेरे रोम रोम में
खनक रही थी
कि तुम्हारे ज़ेहन की बसांद में

लेपा हुआ था
लेपा हुआ चूल्हा
आग की हरारत से
महरूम हो जाता है!
मोहब्बत की हरारत से महरूम
मैं तुम्हारी नामौजूदगी को
अपनी सारि रौशनी देकर
मिटने और बिखरने से बच रही हूँ !
तुम कोई महक भेजते
जो तुम्हारी ना मौजूदगी की खनक में
ज़िन्दगी का राम बन जाती
तुम्हारी फैलाई हुई बिसाहिन
मेरे ही नहीं
तुम्हारे लिए भी
मौत का राग
अलापने लगी है

ख़ुशी छूती नहीं
दुःख बसता है
मन मुसाफिर है
जाने किन ज़मानों की
तरावत खोजने
हर पल सफर में रहता है
बंजर सरज़मीनों में
खनक चश्मों के
ख़्वाब बो देता है
ताबीरें फूटती नहीं
दुःख उग जाता है
दुख जब उगने लगता है
मन की सारि नमी
ले लेता है
आँखों की नमी और ख़्वाब
दोनों सुख जाते है
और दुख
बस जाता है

मेरी वफ़ा
कोई निराश नहीं
जो किसी जाम में खो जाए
मेरी वफ़ा
लहू की दाद सी
दिल से जारी है
वो हर रात चाँद पे
तुम्हारा चेहरा बनाती है
तुम से होले होले कहती है

संभल
अजल आरही हैं होले होले
संभल....
तुम हो कि ज़हर बोने से
बाज़ आते नहीं
समझती हूँ
जो तुम
गोरों के शिकार न होते
ज़हरीले न होते !
पर मैं कितनी सारि
ज़हरीली हरयाली
अपनी ज़मीन में दफनाती रहूं
माना
माना कि औरत
सबसे अच्छी कब्र होती है
कब्रिस्तान भी
चालीस साल बाद
आबाद कर दिए जाते हैं
ज़मीन
आबादी के ख़्वाब देखना
नहीं छोड़ती

तुमने ख़त नहीं
आंधी भेजी थी
जो बहा ले गयी
छत
आंगन, दालान

और शायद
मेरा में भी !
तुम्हारी आमद पे
तुम्हें कहाँ रखूंगी
मेरे मन में
बसेरा
अब मुमकिन नहीं
मलबे में
सिवाय राख के
कुछ भी नहीं
कि कोई छत डाले
जो हम नहीं
तुम या मैं
सर छुपा लें .....
चलो फ़रार की वादियों में
घर बसा लेते हैं
तुम भी
और मैं भी !

मेरे सारे दर्द
आज यकजा हैं !
कोई मुझे सहला रहा है
तो कोई
सीने से लगा रहा है
कोई माँ की तरह
मेरे सिरहाने बैठा है
तो कोई बाप जैसी
शफ़ीक़ नज़रों से
मुझे पढ़ रहा है
कोई दुख के टकोर दे रहा है

तो कोई बोसा !
दर्द ही बस
मेरे हैं
मेरे अपने
मेरे सगे
ख़ुदा-र-आज
मेरे अपनों की दुनिया में
रिश्तों की
कोई भयानक आवाज़
न आने दो
मुझे कुछ पल
दर्द की आग़ोश में
सुस्ताने दो
यह रिश्तों की तरह
शक या ब्लैक -मेल
नहीं करते
मुझे गले लगा के
थपकी देते हैं
यह दर्द
कितने सगे हैं !

मुहब्बत
तुम्हारी दहलीज़ पर
180 दिन ऊंघती रही
तुम मूरख
181 वें दिन
जब घर पहुंचे
तो घर मकान में
बदल चूका था
और मुहब्बत
दर्द में !
अब दर्द क्या जियोगे ?
तुम technics जीते -जीते
न जाने कब
इंसान से
Machine में बदल गए हो
लिबास तो बदल डाले !

ISHQ KHWAB KHUSHBOO

by: Dr. Shabnam Ashai

مرکزی پبلیکیشنز
MARKAZI PUBLICATIONS
ISBN 97881948178-6-4

₹ 200:00